

# मूलमें भूल

उपादान-निमित्त पर परम पूज्य  
सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके प्रवचन



प्रकाशक

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट

सोनगढ-364250

भगवान श्री कुन्दकुन्द-कहान जैन शास्त्रमाला पुष्प : १९



# मूल में भूल

भैया भगवतीदासजी और विद्वद्वर्य  
पंडित श्री बनारसीदासजी कृत दोहों पर  
परम पूज्य श्री कानजीस्वामीके प्रवचन

१८००  ३६१०६

-: अनुवादक :-

पंडित परमेष्ठीदासजी जैन, न्यायतीर्थ



-: प्रकाशक :-

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट  
सोनगढ-364250 (सौराष्ट्र)

अब तककी कुल आवृत्ति सात प्रत : १३७००

आठवीं आवृत्ति प्रत : २००० वि. सं. २०६६ ई.स. २०१०

**मूलमें भूल (हिन्दी)के**

**\* स्थायी प्रकाशन पुरस्कर्ता \***

अमी हर्षदभाई शाह

हस्ते शारदाबेन तथा करिश्मा विशाल महेता तथा  
मधुबेन हरिशभाई दोशी

यह शास्त्रका लागत मूल्य रु. 28=90 है। अनेक मुमुक्षुओंकी आर्थिक सहायतासे इस आवृत्तिकी किंमत रु. 20=00 होती है। उनमें श्री कुंदकुंद-कहान दिगंबर जैन मुमुक्षुमंडल ट्रस्ट, पार्ला-सांताक्रुझकी ओरसे 50 % आर्थिक सहयोग प्राप्त होने पर यह शास्त्रका विक्रय-मूल्य रु. 10=00 रखा गया है।

मूल्य : रु. 10=00



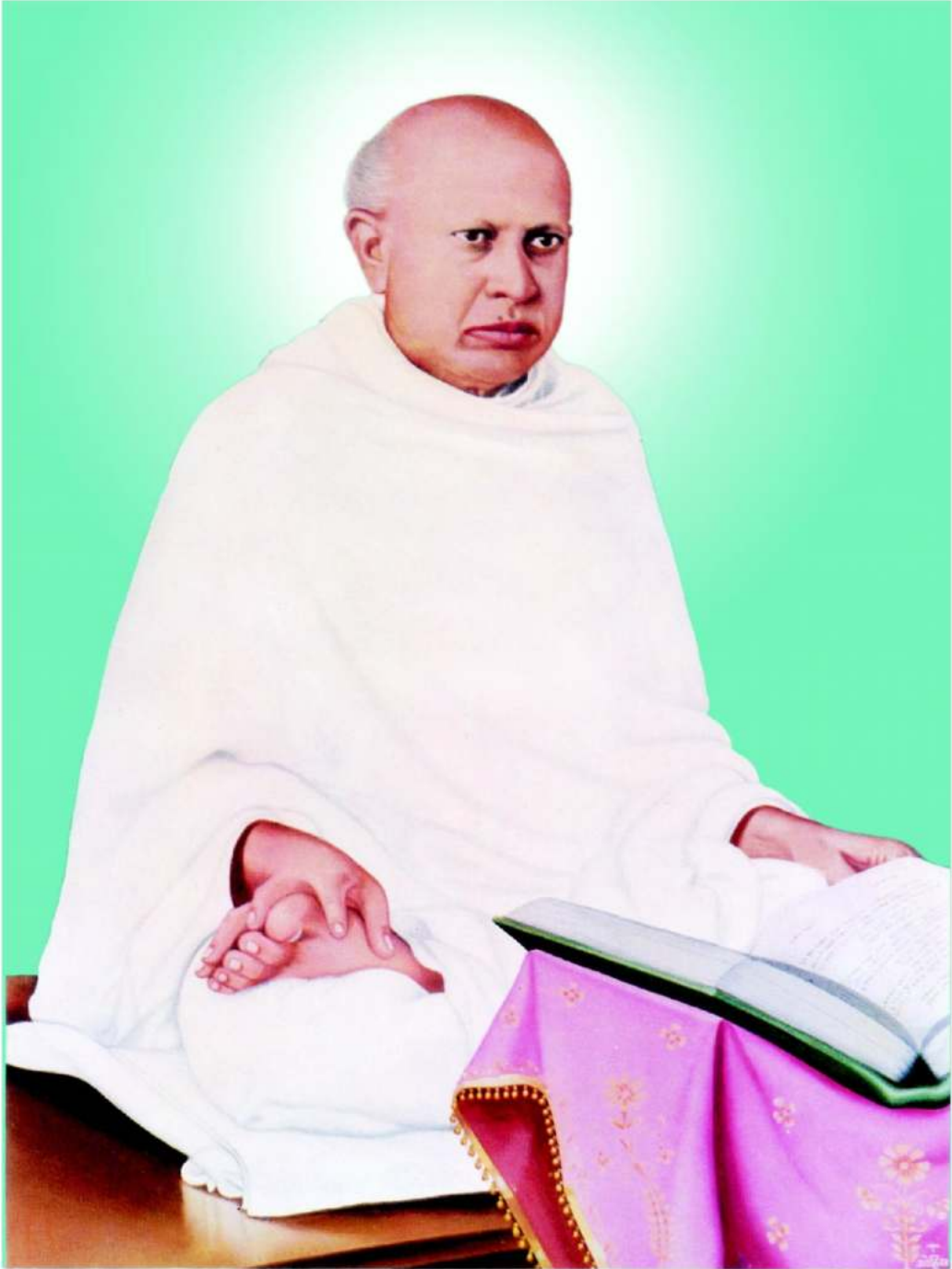
मुद्रक :

कहान मुद्रणालय

जैन विद्यार्थी गृह कम्पाउण्ड,

सोनगढ-३६४२५० ☎ : (02846) 244081

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - 364250



परम पूज्य अध्यात्ममूर्ति सद्गुरुदेव श्री कानजुस्वामी

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

## प्रकाशकीय निवेदन

धर्म-जिज्ञासुओंकी निरन्तर मांग रहनेसे इस पुस्तककी सातवीं आवृत्ति प्रगट करते हुए प्रसन्नता होती है।

उपादान और निमित्तका यथार्थ ज्ञान करनेमें जगतके जीवोंकी अति गंभीर भूल हो रही है। जब तक जीव उस भूलको मिटाता नहीं है, तब तक उसका कल्याण नहीं होता। यह पुस्तक उस मूलभूत भूलका स्वरूप दर्शाकर उसका नाश करनेका यथार्थ उपाय बतलाती है। वर्तमानयुगमें परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एवं पूज्य बहिनश्री चंपाबहिनके कृपाभीगे उपकारसे ही हम उपादान-निमित्तका सच्चा स्वरूप समझ सके हैं।

इस पुस्तकमें उपादान-निमित्त संवाद पर परम पूज्य परमोपकारी श्री कानजीस्वामीके प्रवचन हैं, जिनका संकलन श्री ब्र. हरिलाल जैनने अत्यन्त सावधानी पूर्वक किया है और गुजराती आत्मधर्ममें कई वर्ष पूर्व प्रकाशित हो चुके हैं। उनका हिन्दी अनुवाद श्री पं० परमेष्ठीदासजी न्यायतीर्थ (ललितपुर) ने किया है। जिन भाइयोंने इस प्रकाशनमें सहयोग दिया है उन सभीके प्रति हम आभार व्यक्त करते हैं।

उपादान-निमित्तके यथार्थ स्वरूपको समझकर स्व-परके भेदज्ञान द्वारा आत्मार्थी जीव अपना कल्याण करें, यही भावना है।

पूज्य गुरुदेवश्रीका  
१२१वाँ जन्म-महोत्सव  
वैशाख सुद-२  
दि. १५-५-२०१०

साहित्यप्रकाशनसमिति  
श्री दि० जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,  
सोनगढ (सौराष्ट्र)



श्री भैया भगवतीदासजी कृत  
उपादान-निमित्त-संवादके  
४७ दोहे

पाद प्रणमि जिनदेवके, एक उक्ति उपजाय।  
उपादान अरु निमित्तको, कहूँ संवाद बनाय॥१॥  
पूछत है कोऊ तहाँ, उपादान किह नाम।  
कहो निमित्त कहिये कहा, कब कै है इह ठाम॥२॥  
उपादान निज शक्ति है, जियको मूल स्वभाव।  
है निमित्त परयोग तें, बन्यो अनादि बनाव॥३॥  
निमित्त कहै मोकों सबै, जानत हैं जगलोय।  
तेरे नाव न जानही, उपादान को होय॥४॥  
उपादान कहै रे निमित्त, तू कहा करै गुमान।  
मोकों जानें जीव वे, जो हैं सम्यक्वान॥५॥  
कहैं जीव सब जगतके, जो निमित्त सोइ होय।  
उपादान की बातको, पूछे नहीं कोय॥६॥  
उपादान बिन निमित्त तू, कर न सके इक काज।  
कहा भयौ जग ना लखै, जानत हैं जिनराज॥७॥  
देव जिनेश्वर गुरु यती, अरु जिन आगम सार।  
इह निमित्तसे जीव सब, पावत हैं भवपार॥८॥  
यह निमित्त इह जीवके, मिल्यो अनन्तीवार।  
उपादान पलट्यो नहीं, तो भटक्यो संसार॥९॥

कै केवलि कै साधुके, निकट भव्य जो होय।  
 सो क्षायक सम्यक् लहै, यह निमित्त बल जोय॥१०॥  
 केवलि अरु मुनिराजके, पास रहे बहु लोय।  
 पै जाको सुलट्यो धनी, क्षायिक ताको होय॥११॥  
 हिंसादिक पापन किये, जीव नर्कमें जाहिं।  
 जो निमित्त नहीं कामको, तो इम काहे कहाहिं॥१२॥  
 हिंसामें उपयोग जहाँ, रहे ब्रह्मके राच।  
 तेई नर्कमें जात हैं, मुनि नहिं जाहिं कदाच॥१३॥  
 दया दान पूजा किये, जीव सुखी जग होय।  
 जो निमित्त झूठै कहो, यह क्यों माने लोय॥१४॥  
 दया दान पूजा भली, जगत माँहि सुखकार।  
 जहँ अनुभवको आचरण, तहँ यह बंधविचार॥१५॥  
 यह तो बात प्रसिद्ध है, सोच देख उर माँहि।  
 नरदेहीके निमित्त विन, जिय त्यों मुक्ति न जाँहि॥१६॥  
 देह पींजरा जीवको, रोकै शिवपुर जात।  
 उपादानकी शक्ति सों, मुक्ति होत रे भ्रात॥१७॥  
 उपादान सब जीव पै, रोकन हारौ कौन।  
 जाते क्यों नहिं मुक्तिमें, विन निमित्तके हौन॥१८॥  
 उपादान सु अनादिको, उलट रह्यौ जगमाँहिं।  
 सुलटत ही सूधे चलें, सिद्धलोकको जाँहि॥१९॥  
 कहूँ अनादि विन निमित्त ही, उलट रह्यौ उपयोग।  
 ऐसी बात न सम्भवै, उपादान तुम जोग॥२०॥

उपादान कहे रे निमित्त, हम पै कही न जाय।  
ऐसे ही जिन केवली, देखे त्रिभुवन राय॥२१॥  
जो देख्यो भगवान ने, सो ही सांचो आहिं।  
हम तुम संग अनादिके, बली कहोगे कांहि॥२२॥  
उपादान कहे वह बली, जाको नाश न होय।  
जो उपजत विनशत रहे, बली कहाँ ते सोय॥२३॥  
उपादान तुम जोर हो, तो क्यों लेत अहार।  
पर निमित्तके योग सों जीवत सब संसार॥२४॥  
जो अहारके जोग सों, जीवत हैं जगमाँहि।  
तो वासी संसारके, मरते कोऊ नाँहि॥२५॥  
सूर सोम मणि अग्निके, निमित्त लखें ये नैन।  
अंधकारमें कित्त गयो, उपादान दृग दैन॥२६॥  
सूर सोम मणि अग्नि जो, करे अनेक प्रकाश।  
नैन शक्ति विन ना लखैं, अंधकार सम भास॥२७॥  
कहै निमित्त वे जीवको, मो विन जगके माँहिं।  
सबै हमारे वश परे, हम विन मुक्ति न जाँहि॥२८॥  
उपादान कहै रे निमित्त, ऐसे बोल न बोल।  
तोकों तज निज भजत हैं, ते ही करें किलोल॥२९॥  
कहै निमित्त हमको तजैं, ते कैसे शिव जात।  
पंच महाव्रत प्रगट है, और हु क्रिया विख्यात॥३०॥  
पंच महाव्रत जोग त्रय, और सकल व्यवहार।  
पर कौ निमित्त खपायके, तब पहुंचे भवपार॥३१॥



कहै निमित्त जग मैं बडौ, मोतैं बडौ न कोय।  
 तीनलोकके नाथ सब, मो प्रसाद तें होय॥३२॥  
 उपादान कहै तू कहा, चहुंगतिमें ले जाय।  
 तो प्रसाद तें जीव सब, दुःखी होहिं रे भाय॥३३॥  
 कहै निमित्त जो दुःख सहै, सो तुम हमहि लगाय।  
 सुखी कौन तैं होत है, ताको देहु बताय॥३४॥  
 जो सुखको तू सुख कहै, सो सुख तो सुख नाँहि।  
 ये सुख-दुःखके मूल हैं, सुख अविनाशी माँहि॥३५॥  
 अविनाशी घट घट वसे, सुख क्यों विलसत नाँहि।  
 शुभ निमित्तके योग बिन, परे परे विललाहिं॥३६॥  
 शुभ निमित्त इह जीवको, मिल्यो कई भवसार।  
 पै इक सम्यक्दर्श बिन, भटकत फिस्वो गँवार॥३७॥  
 सम्यक्दर्श भये कहा, त्वरित मुक्ति में जाहिं।  
 आगे ध्यान निमित्त है, ते शिवको पहुँचाहिं॥३८॥  
 छोर ध्यानकी धारणा, मोर योगकी रीत।  
 तोरि कर्मके जालको, जोर लई शिव प्रीत॥३९॥  
 तब निमित्त हास्यो तहँ, अब नहिं जोर बसाय।  
 उपादान शिव लोक में, पहुँच्यौ कर्म खपाय॥४०॥  
 उपादान जीत्यो तहँ, निजबल कर परकाश।  
 सुख अनन्त ध्रुव भोगवे, अन्त न वरन्वो तास॥४१॥  
 उपादान अरु निमित्त ये, सब जीवन पै वीर।  
 जो निजशक्ति संभार ही, सो पहुँचे भव तीर॥४२॥

भैया महिमा ब्रह्मकी, कैसे वरनी जाय।  
वचन अगोचर वस्तु है, कहिवो वचन बताय ॥४३॥  
उपादान अरु निमित्तको, सरस बन्चौ संवाद।  
सम्यग्दृष्टिको सरल है, मूर्खको बकवाद ॥४४॥  
जो जानै गुण ब्रह्मके, सो जाने यह भेद।  
साख जिनागम सों मिलै, तो मत कीज्यो खेद ॥४५॥  
नगर आगरा अग्र है, जैनी जनको वास।  
तिह थानक रचना करी, 'भैया' स्वमतिप्रकाश ॥४६॥  
संवत् विक्रम भूपको, सत्ररहसैं पंचास।  
फाल्गुन पहले पक्षमें, दशों दिशा परकाश ॥४७॥

१६००  १६१६

ॐ नमः सिद्धेभ्यः



भैया भगवतीदासजी कृत

## उपादान-निमित्त संवाद

पर किये गये

परम पूज्य श्री कानजीस्वामीके प्रवचन



यह उपादान-निमित्तका संवाद है, अनादिकालसे उपादान-निमित्तका झगड़ा चला आ रहा है। उपादान कहता है कि दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि गुणोंकी सावधानीसे आत्माका कल्याणरूपी कार्य होता है। निमित्त कहता है कि शरीरादिकी क्रिया करनेसे अथवा देव-गुरु-शास्त्रसे और शुभभावसे आत्माका कल्याण होता है। इस प्रकार स्वयं अपनी बात सिद्ध करनेके लिये उपादान और निमित्त दोनों युक्तियाँ उपस्थित करते हैं और झगड़ेका समाधान यहाँ पर वीतराग शासनमें सच्चे ज्ञानके द्वारा होता है।

अनादिकालसे जगतके अज्ञानी जीवोंकी दृष्टि परके ऊपर है, इसलिये 'मेरे आत्माका कल्याण करनेकी मुझमें शक्ति नहीं है, मैं अपंग-शक्तिहीन हूँ, कोई देव, गुरु, शास्त्र इत्यादि पर मुझे समझा दें तो मेरा कल्याण हो,—इस प्रकार अनादिकालसे अपने आत्माके कल्याणको पराश्रित मानता है। ज्ञानीकी दृष्टि अपनी आत्मा पर है, इसलिये यह मानता है कि आत्मा स्वयं पुरुषार्थ करेगा तो मुक्ति होगी, अपने पुरुषार्थके अतिरिक्त किसीके आशीर्वाद इत्यादिसे

कल्याण होगा, यह मानना सो अज्ञान है। इस प्रकार उपादान कहता है कि आत्मासे ही कल्याण होता है और निमित्त कहता है कि परवस्तुका साथ हो तो आत्मकल्याण हो, उसमें निमित्तकी बात बिलकुल झूठ अज्ञानसे परिपूर्ण है, यही बात इस संवादमें सिद्ध की गई है।

**उपादान**—अर्थात् वस्तुकी सहज शक्ति और आत्मा परसे भिन्न है, देहादिक किसी परवस्तुसे आत्माका कल्याण नहीं होता; इसप्रकार श्रद्धा—ज्ञान करना सो उपादान कारण है।

**निमित्त**—अर्थात् अनुकूल संयोगी अन्य वस्तु, जब आत्मा सच्ची श्रद्धा—ज्ञान करता है तब जो सच्चे देव, शास्त्र, गुरु उपस्थित हों उन्हें निमित्त कहा जाता है।

देव, गुरु, शास्त्र मुझमेंसे भिन्न हैं और पुण्य—पापके भाव भी मैं नहीं हूँ, मैं ज्ञानादि अनन्तगुणका पिण्ड हूँ इस प्रकार जीव अपनी शक्तिकी संभाल करता है सो उपादान कारण है और अपनी शक्ति उपादान है। यहाँ उपादान और उपादान कारण का भेद बतलाया गया है। उपादान त्रिकाली द्रव्य है और उपादान कारण पर्याय है। जो जीव उपादान शक्तिको संभाल कर उपादान कारणको करता है उसके मुक्तिरूपी कार्य अवश्य प्रगट होता है।

आगे ४२ वें दोहे में इस सम्बन्धमें कहा गया है कि 'उपादान और निमित्त तो सभी जीवोंके होता है, किन्तु जो वीर है वह निजशक्तिको सम्भाल लेता है और भवसागरको पार करता है' यहाँ पर निजशक्तिकी सम्भाल करना सो उपादान कारण है और वही मुक्तिका कारण है। आत्मामें शक्ति तो बहुत कुछ है, किन्तु जब स्वयं उस शक्तिकी सम्भाल करे तब श्रद्धा—ज्ञान—स्थिरतारूप

मुक्तिका उपाय हो; किन्तु अपनी शक्तिकी सम्भाल किये बिना मुक्तिका उपाय नहीं हो सकता। यही बतानेके लिये इस संवादमें उपादान और निमित्तकी एक दूसरेके विरुद्ध युक्तियाँ दी गई हैं और इस सम्बन्धमें सर्वज्ञ भगवानका अन्तिम निर्णय भी दिया गया है, जिससे उपरोक्त कथन सिद्ध होता है।

आत्माका उपादान स्वभाव मन, वाणी, देहरहित है, उसे किसी परवस्तुकी सहायता नहीं है ऐसी सहजशक्तिका जो भान करता है वह उपादान स्वभावको जानता है। उपादान स्वभावको जाना सो उपादान कारण हुआ और उस समय उपस्थित देव, शास्त्र, गुरु इत्यादिको निमित्त कहा जाता है। उपादान-निमित्तकी यह बात बड़ी अच्छी और समझने योग्य है। शास्त्राधारसे अपूर्व कथन किया गया है, उसमें पहले मांगलिक रूपमें निम्न लिखित दोहा कहा गया है :—

मूल (दोहा) विद्यावदः

पाद प्रणमि जिनदेवके एक उक्ति उपजाय।

उपादान अरु निमित्तको, कहूँ संवाद बनाय॥१॥

अर्थ—जिनेन्द्रदेवके चरणोंमें प्रणाम करके एक अपूर्व कथन तैयार करता हूँ—उपादान और निमित्तका संवाद बनाकर उसे कहता हूँ।

इस बात को समझनेके लिये यदि जीव गहरा उतर कर विचार करे तो उसका रहस्य ज्ञात हो। जैसे आधे मन दहीकी छाछमेंसे मक्खन निकालनेके लिये यदि ऊपर ही ऊपर हाथ फेरा जाय तो मक्खन नहीं निकलता, किन्तु छाछको बिलोकर भीतर नीचे तक हाथ डालकर मथे तब मक्खन ऊपर आता है, किन्तु यदि सर्दिके

दिनोंमें ठंडीके कारण आलस्य करके छाछके भीतर हाथ न डाले तो छाछमेंसे मक्खन नहीं निकलेगा, इसीप्रकार जैनशासनमें जैन परमात्मा सर्वज्ञदेवके द्वारा कहे गये तत्त्वोंमेंसे यदि गहरी तर्कबुद्धिके द्वारा गहरा विचार करके मक्खन निकाले तो मुक्ति हो। उपरोक्त दोहेमें 'उक्ति' शब्दका प्रयोग किया है, उसका इस प्रकार अर्थ किया है।

जिनदेव सर्वज्ञ वीतराग भगवानके चरणकमलमें प्रणाम करके अर्थात् विशेष प्रकारसे नमस्कार करके मैं एक युक्ति बनाता हूँ। अर्थात् तर्कका दोहन करता हूँ। इस संवादमें युक्ति पुरस्कार बात कही गई है, इसलिये समझनेवालेको भी तर्क और युक्तिके द्वारा समझनेका परिश्रम करना होगा। यों ही ऊपर ही ऊपरसे सुन लेनेमें समझमें नहीं आयेगा। जैसे छाछको बिलोनेसे मक्खन निकलता है उसीप्रकार स्वयं ज्ञानमें विचार करके समझे तो यथार्थ तत्त्व प्राप्त हो। जैसे घरका आदमी चाहे जितनी नरम रोटी बनावे, किन्तु वह कहीं खा नहीं देता, वह तो उसे स्वयं खाना होता है, इसीप्रकार श्री सद्गुरुदेव चाहे जैसी सरल भाषामें कहें, किन्तु भाव तो स्वयं ही समझना होगा। तत्त्वको समझनेके लिये अपनेमें विचार करना चाहिये। जिन्हें केवलज्ञान और केवलदर्शनरूपी आत्मलक्ष्मी प्रगट हुई है, ऐसे श्री वीतराग परमात्माको नमस्कार करके उनकी कही गई बातको न्यायकी संधिसे मैं (भैया भगवतीदास) युक्ति पूर्वक उपादान-निमित्तके संवादके रूपमें कहता हूँ॥१॥

—प्रश्न—

पूछत है कोऊ तहाँ उपादान किह नाम।  
कहो निमित्त कहियै कहा कबके है इहठाम॥२॥

**अर्थ**—यहाँ कोई पूछता है कि उपादान किसका नाम है, निमित्त किसे कहते हैं और उनका सम्बन्ध कबसे है सो कहो ?

उपादानका अर्थ क्या है, यह बहुतसे लोग नहीं जानते। हिसाबकी बहियोंमें भी उपादानका नाम नहीं आता है। दया इत्यादि करनेसे धर्म होता है यह तो बहुतसे लोग सुनते और मानते हैं, किन्तु यह उपादान क्या है और निमित्त क्या है, इसका स्वरूप नहीं जानते; इसलिये उपादान और निमित्तका स्वरूप इस संवादमें बताया गया है।

दहीके होनेमें दूध उपादान और छाछ निमित्त है। दही दूधमेंसे होता है छाछमेंसे नहीं होता। यदि छाछमेंसे दही होता हो तो पानीमें छाछ डालनेसे भी दही हो जाना चाहिये, किन्तु ऐसा नहीं होता। इसीप्रकार शिष्यके आत्माकी पर्याय बदलकर मोक्ष होता है। कहीं गुरुकी आत्मा बदलकर शिष्यकी मोक्षदशाके रूपमें नहीं हुआ जाता। शिष्यका आत्मा अपना उपादान है, वह स्वयं समझकर मुक्त होता है। किन्तु गुरुके आत्मामें शिष्यकी कोई अवस्था नहीं होती।

उपादान = 'उप + आदान' उपका अर्थ है समीप और आदानका अर्थ है ग्रहण होना। जिस पदार्थके समीपमेंसे कार्य वा ग्रहण हो वह उपादान है और उस समय जो परपदार्थकी अनुकूल उपस्थिति हो सो निमित्त है ॥२॥

अब शिष्य प्रश्न पूछता है—(कोई विरला जीव ही तत्त्वके प्रश्नोंको पूछनेके लिये खड़ा रहता है, जिसे प्यास लगी होती है वही पानीकी प्याऊके पास जाकर खड़ा होता है, इसी प्रकार जिसे आत्मस्वरूपको समझनेकी प्यास लगी है और उस ओरकी जिसे आन्तरिक आकांक्षा है, वही जीव सत्समागमसे पूछता है) हे प्रभु ! आप उपादान किसे कहते हैं और निमित्त किसे कहते हैं और वे

उपादान तथा निमित्त एक स्थान पर कबसे एकत्रित हुये हैं ? दोनोंका संयोग कबसे है ?

ऐसे जिज्ञासु शिष्यके प्रश्नका उत्तर देते हुए कहते हैं कि :—

उपादान निज शक्ति है जियको मूल स्वभाव।

है निमित्त परयोग तें बन्यो अनादि बनाव॥३॥

**अर्थ**—उपादान अपनी निजशक्ति है, वह जीवका मूल स्वभाव है और पर संयोग निमित्त है उनका सम्बन्ध अनादिकालसे बना हुआ है।

यहाँ पर कहा गया है कि जीवका मूल स्वभाव उपादान है, क्योंकि यहाँ पर जीवकी बात लेनी है; इसलिये यह बताया है कि जीव की मुक्ति में उपादान क्या है और निमित्त क्या है ? जीवका मूल स्वभाव उपादानके रूपमें लिया गया है। यहाँ पर समस्त द्रव्योंकी सामान्य बात नहीं है किन्तु विशेष जीव द्रव्यकी मुक्तिकी ही बात है।

जीवकी पूर्ण शक्ति उपादान है यदि उसकी पहचान करे तो सम्यग्दर्शन—ज्ञान—चारित्ररूप उपादान कारण प्रगट हो और मुक्ति प्राप्त हो। जीवका मूल स्वभाव ही मुक्ति प्राप्त करना है वह अन्तरमें है, अन्तरंगकी शक्तिमेंसे मुक्ति प्रकट होती है, किसी देव, गुरु, शास्त्र, वाणी अथवा मनुष्य शरीर इत्यादि परकी सहायतासे जीवकी मुक्ति नहीं होती।

**प्रश्न**—जो सच्चे गुरु होते हैं वे भूले हुआँको मार्ग तो बतलाते ही हैं, इसलिये उनकी इतनी सहायता तो मानी ही जायेगी ?

**उत्तर**—जो भूला हुआ है वह पूछकर निश्चय करता है सो



किसके ज्ञानसे निश्चय करता है। भूले हुयेके ज्ञानसे अथवा गुरुके ज्ञानसे ? गुरु कहीं किसीके ज्ञानमें निश्चय नहीं करा देते किन्तु जीव स्वयं अपने ज्ञानमें निश्चय करता है; इसलिये जो समझता है वह अपनी ही उपादान शक्तिसे समझता है।

जैसे किसीको सिद्धपुर जाना है, उसने किसी जानकारसे पूछा कि सिद्धपुर कहाँ है ? तब उसने जवाब दिया कि (१) यहाँसे सिद्धपुर ८ कोस दूर है, (२) मार्गमें जाते हुए बीचमें दो बड़े शीतल छायावाले वटवृक्ष मिलेंगे, (३) आगे चलने पर एक मीठे पानीका अमृत-सरोवर मिलेगा। उसके बाद तत्काल ही सिद्धपुर आयेगा। इस प्रकार जानकारने कहाँ, किन्तु उस पर विश्वास करके निश्चय कौन करता है ? बताने वाला या भूला हुआ आदमी ? जो भूला है वह अपने ज्ञानमें निश्चय करता है इसीप्रकार मुक्तिकी आकांक्षा रखनेवाला शिष्य पूछता है मुक्तिका अन्तरंगकारण और बहिरंग-कारण क्या है ? और प्रभो ! मेरी सिद्धदशा कैसे प्रगट होगी, उसका उपाय मार्ग क्या है ? श्रीगुरु उसका उत्तर देते हैं :—

(१) आत्माकी पहिचानसे और स्वाश्रयकी पूर्णतासे सिद्धदशा प्रगट होती है, (२) आत्माकी सच्ची पहिचान और श्रद्धा करने पर स्वभावकी परमशांतिका अनुभव होता है। आत्माकी श्रद्धा और ज्ञानरूपी दो वटवृक्षोंकी शीतलता सिद्धदशा के मार्गमें आती है; (३) उसके बाद आगे बढ़ने पर चारित्रदशा प्रगट होती है अर्थात् स्वरूप-रमणतारूप अमृत-सरोवर आता है, इस प्रकार सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्ररूप मोक्षमार्ग पूर्ण होने पर केवलज्ञान और सिद्धदशा प्रगट होती है। यहाँ पर उपादान-निमित्त सिद्ध करना है। जब शिष्य तैयार होकर श्रीगुरुसे पूछता है कि प्रभु ! मुक्ति कैसे होगी ? तब

श्रीगुरु उसे मुक्तिका उपाय बताते हैं, किन्तु जिस प्रकार उपाय बताया उसीप्रकार विश्वास लाकर निश्चय कौन करता है ? बतानेवाला या भूला हुआ ? जो अपने ज्ञानमें भूला हुआ है वही यथार्थ समझसे भूलको दूर करके अपने ज्ञानमें निश्चय करता है।

यह तो मुक्तिका उपाय है, उसकी महिमाको जानना चाहिये। जैसे कोई हीरा माणिककी कीमतको जाने और जवाहरातकी दुकान पर बैठे तो झट लाखोंकी आमदनी हो और कपड़ोंको मैल न लगे; किन्तु यदि हलवाईकी दुकान पर बैठे तो जल्दी कमाई न हो और कपड़ोंको मैल लगे। इसीप्रकार यदि आत्माके चैतन्यस्वभावको पहचानकर उसकी कीमत करे तो मोक्षरूपी आत्मलक्ष्मी झट प्राप्त हो जाय। स्वरूपकी शक्तिका भान सो हीरेका व्यापार है, उसमें मुक्तिलक्ष्मी झट प्राप्त हो जाती है और आत्माको कर्ममल नहीं लगता। आत्माकी प्रतीतिके बिना कभी भी मुक्ति नहीं होती और कर्ममल लग जाता है।

आत्माके अन्तरङ्गमेंसे आत्माके गुणोंको ग्रहण किया जा सकता है इसलिये आत्मा उपादान है, जिसमेंसे गुणका ग्रहण हो वह उपादान है। चिदानन्द भगवान आत्मा अपनी अनन्त शक्तिसे देहमें विराजता है, उसे पहचानकर उसमेंसे मुक्तिका माल निकालना है। यहाँ उपादानका स्वरूप बताया गया है। अब निमित्तका स्वरूप बताते हैं :—

‘है निमित्त पर योग तें’—अर्थात् जब आत्मा अपने स्वरूपकी पहिचान करता है तब जो सच्चे देव, शास्त्र, गुरु संयोगरूपमें उपस्थित हों वे निमित्त कहलाते हैं। उपादान-निमित्तका यह सम्बन्ध अनादिकालीन है, सिद्धदशामें भी आत्माकी शक्ति उपादान है और

स्थितमें अधर्मद्रव्य, परिणमनमें कालद्रव्य इत्यादि निमित्त हैं। उपादान और निमित्त यह दोनों अनादिकालीन हैं।

कोई यह कहे कि “यदि कोई यह माने कि सब मिलकर एक आत्मा ही है और कोई यह माने कि अनन्त आत्मा पृथक् है, किन्तु सबका साध्य तो एक ही है न ?” तो यह बात बिलकुल गलत है। जिसने एक ही आत्मा को माना है वह उपादान-निमित्त इन वस्तुओंको नहीं मानता, इसलिये वह अज्ञानी है और जो यह मानता है कि “अनन्त आत्मा प्रत्येक भिन्न-भिन्न हैं, मैं स्वाधीन आत्मा हूँ” उसने वस्तुके यथार्थ स्वरूपको जान लिया है। यह बात गलत है कि सबका साध्य एक ही है। ज्ञानी-अज्ञानी दोनोंके साध्य पृथक् ही हैं।

जब आत्मा अपनी उपादान शक्तिसे ओंघा गिरता है तब कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र इत्यादि निमित्तरूप होते हैं और जब अपनी उपादान शक्तिसे सीधा होता है तब सच्चे देव, शास्त्र, गुरु निमित्तरूप होते हैं। निमित्त तो पर वस्तुकी उपस्थिति मात्र है यह कहीं कुछ करवाता नहीं है, अपनी शक्तिसे उपादान स्वयं कार्य करता है। उपादान और निमित्त दोनों अनादि हैं, किन्तु निमित्त-उपादानको कुछ देता-लेता नहीं है ॥३॥

—निमित्तका तर्क—

निमित्त कहै मोकों सबै, जानत है जगलोय;  
तेरा नाँव न जान ही, उपादान को होय ॥४॥

अर्थ :—निमित्त कहता है कि जगत्के सभी लोग मुझे जानते हैं और उपादान कौन है, उसका नाम तक नहीं जानते।

समस्त जगत्के लोग निमित्तका नाम जानते हैं। सहारा हो तो बेल चढ़े, खान-पानकी अनुकूलता हो तो धर्म हो, मानवदेह हो तो मुक्ति हो इसप्रकार निमित्त कार्यसे होता है यों समस्त विश्वके जीव मानते हैं और इसीलिये वे निमित्तको जानते हैं परन्तु उपादानको कोई नहीं जानता। सारा संसार यह मानता है कि यदि बाह्य निमित्त ठीक हो तो आत्मा सुखी होती है, किन्तु उपादानका तो कोई नाम तक नहीं जानता, इसलिये हे उपादान तू मुफ्तकी बढ़ाई क्यों किया करता है क्या लँगड़ा आदमी बिना लकड़ी के चल सकता है, लकड़ीका निमित्त आवश्यक है; इसलिये निमित्तका ही बल है। इसप्रकार निमित्त तर्क करता है, किन्तु निमित्तका यह तर्क गलत है। लँगड़ा अपनी योग्यता से चलता है यदि लकड़ीके कारण चलता हो तो लकड़ीसे मुर्दा भी चलना चाहिये, किन्तु मुर्देमें चलनेकी योग्यता नहीं है; इसलिये वह नहीं चलता। इसका अर्थ यह है कि उपादान की शक्तिसे ही कार्य होता है।

निमित्त कहता है कि यदि आप निमित्तके बलको नहीं मानते तो भगवानकी प्रतिमाको क्यों नमस्कार करते हो ? वह भी निमित्त है या नहीं ? और फिर मुक्ति प्राप्त करनेके लिये मानव शरीर तो चाहिये ही ? और यदि कान ठीक हों तभी तो सुनकर धर्म प्राप्त होता है तात्पर्य यह है कि सर्वत्र निमित्तका ही बोलबाला है, दुनियाँमें किसीसे भी पूछो तो सब यही कहेंगे।

इस संवादसे यह सिद्ध हो जायेगा कि निमित्तकी ओरसे दिये गये उपरोक्त सभी तर्क वृथा हैं। निमित्तने जो जो कुछ कहा है वह सब भवभ्रमण करनेवाले जगत्के अज्ञानी जीव मानते हैं, वे उपादानको नहीं पहचानते। इस संवादमें उपादान-निमित्तके

सिद्धांतकी बात है। उपादान-निमित्त दोनों अनादि अनन्त हैं। इसमें उन दोनोंका यथार्थज्ञान करनेके लिये उपदेश है।

अनादिकालसे जगत्के अज्ञानी जीव यह नहीं जानते कि उपादान कौन है ? वे तो निमित्तको ही जानते हैं। छोटा बालक भी कहता है कि यदि अध्यापक हो तो अक्षर सीखे जाय, परन्तु यदि अध्यापक न हो तो कौन सिखाये ? किन्तु सच तो यह है कि जो प्रारम्भिक अक्षर अ आ इत्यादि सीखता है वह उसके सीखनेकी अपनी शक्तिसे सीखता है किसी भैसे इत्यादिमें अ आ इत्यादि सीखनेकी शक्ति नहीं है, इसलिये वे सीख नहीं सकते। समस्त जगत् निमित्तको जानता है, बालकसे लेकर मांघाता अज्ञानी मुनिसे पूछो कि मुक्ति कैसे होती है ? तो कोई कहेगा कि बाह्य क्रियासे और कोई कहेगा कि पुण्यसे मुक्ति होती है, किन्तु वह कोई आत्माकी मूल उपादान शक्तिको नहीं जानते। निमित्तने अज्ञानियोंको अपने पक्षमें रखकर यह युक्ति रखी है।

अब ज्ञानियोंको अपने पक्षमें लेकर उपादान उसका उत्तर देता है :—

उपादान कहै रे निमित्त, तू कहा करै गुमान।

मोकों जानें जीव वे जो हैं सम्यक्वान॥५॥

अर्थ :—उपादान कहता है कि हे निमित्त ! तू अभिमान किसलिये करता है, जो जीव सम्यक्ज्ञानी हैं वे मुझे जानते हैं। आत्माके स्वभावको समझनेवाले ज्ञानियों को अपने पक्षमें रखकर उपादान कहता है कि :—हे निमित्त ! तू अभिमान क्यों करता है ? तेरा अभिमान मिथ्या है। जगत्के अज्ञानियोंके झुण्ड तुझे जानते हैं तो इसमें तेरी क्या बढ़ाई है ? किन्तु मुझे सभी ज्ञानी जानते हैं। राख

तो घर-घरमें हरएक चूल्हेमें होती है, इसलिये कहीं राख किमती नहीं मानी जाती और हीरेके व्यापारी थोड़े होते हैं, इसलिये हीरेकी कीमत कम नहीं हो जाती। इस प्रकार जगत्के बहुतसे जीव यह मानते हैं कि दूसरेसे कार्य होता है, किन्तु इतने मात्रसे कहीं परसे कार्य नहीं हो जाता। उपादान स्वभावकी बातको तो ज्ञानी ही जानते हैं। अज्ञानियोंकी वहाँ गति नहीं है।

निमित्तसे कार्य नहीं होता तथापि जब जीव स्वयं समझता है तब सच्चे गुरुका ही निमित्त होता है। गुरुसे ज्ञान नहीं और गुरुके बिना ज्ञान नहीं होता। सच्चे गुरुके बिना त्रिकालमें भी ज्ञान नहीं हो सकता और त्रिकालमें भी गुरु किसीको ज्ञान नहीं दे सकते। जब जीव अपनी शक्तिसे सच्ची पहिचान करता है तब सत्पुरुषकी ही वाणी की उपस्थिति होती है, किन्तु सत्पुरुषकी वाणीसे जीव समझता नहीं है। जीव यदि स्वतः नहीं समझता तो वाणी को निमित्त नहीं कहा जा सकता।

प्रश्न :—आप कहते हैं कि बिना निमित्तके कार्य नहीं होता और निमित्तसे भी नहीं होता। किन्तु इन बातोंमेंसे यथार्थ कौन सी है ?

उत्तर :—दोनों ही यथार्थ हैं। क्योंकि निमित्त उपस्थित तो रहता ही है, और निमित्तसे कोई कार्य नहीं होता। इसप्रकार दोनों पहलुओंको समझ लेना चाहिये। जैसे दो आँखोंवाला आदमी सब कुछ ठीक देखता है, एक आँखवाला—काना आदमी सब कुछ ठीक नहीं देख पाता और दोनों आँखोंसे अँधा आदमी कुछ भी देख नहीं सकता। इसीप्रकार जो उपादान और निमित्तको वे जैसे हैं उसीप्रकार जाने तो ठीक जाननेवाला (सम्यक्ज्ञानी) है। और जो यह मानता

है कि निमित्त नहीं है अथवा निमित्तसे कार्य होता है तो उपरोक्त (कानेके) दृष्टान्तकी भाँति उसके ज्ञानमें भूल है। और जो निमित्त-उपादान दोनों नहीं हैं—यों दोनोंको ही नहीं जानता—मानता वह अँधेकी भाँति बिलकुल ज्ञानहीन है।

प्रथम दोनों आँखोंसे सब कुछ ठीक देख-जानकर पश्चात् खास पदार्थकी ओरकी एकाग्रताके लिये दूसरे पदार्थकी ओरसे आँख बन्द कर ले तो वह ठीक है। इसी प्रकार पहले उपादान-निमित्तको ठीक जानकर पश्चात् स्वरूपमें एकाग्रता करनेके लिये निमित्तका लक्ष छोड़ देना ठीक है। किन्तु पहले उपादान-निमित्तको वह जैसा है उसी प्रकार यथार्थ रूपमें समझ लेना चाहिये।

जब आत्मस्वभावकी प्रतीति करता है तब निमित्त होता है, इसप्रकार ज्ञान करनेके लिये दोनों हैं, किन्तु आदरणीय दोनों नहीं हैं। आदरणीय तो उपादान है, और निमित्त हेय है। उपादानकी शक्तिसे कार्य होता है। जो सम्यग्ज्ञानी हैं, अर्थात् आत्माको पहिचाननेवाले हैं वे ही उपादानकी शक्ति को जानते हैं।

निमित्त कहता है कि :—

कहैं जीव सब जगतके, जो निमित्त सोई होय।

उपादानकी बातको, पूछे नहीं कोय॥६॥

अर्थ :—जगतके सब जीव कहते हैं कि—जैसा निमित्त होता है वैसा ही कार्य होता है। उपादानकी बातको तो कोई पूछता ही नहीं है।

निमित्त अपनी बलवत्ता बतानेके लिये कहता है कि यदि अनुकूल-ठीक निमित्त हो तो काम हो; रोटी मिले तो जीवन रहे,

मानव देह मिले तो मुक्ति हो, काल ठीक हो तो धर्म हो, इस प्रकार सारी दुनिया कहती है। किन्तु यह कौन कहता है कि मनुष्य शरीरके बिना मुक्ति होती है ? इसलिये देखो, शरीरके निमित्तसे ही काम होता है न ? और यदि आप निमित्तसे कुछ नहीं मानते हो तो भगवान की प्रतिमाको क्यों मानते हो ? इससे सिद्ध हुआ कि निमित्त ही बलवान है।

निमित्तका यह तर्क ठीक नहीं है। मिथ्यात्वको जीतनेवाले जैन स्वतंत्र वस्तुस्थितिको मानते हैं, भगवानकी प्रतिमाके कारण अथवा उस ओरके रागके कारण धर्म नहीं मानते, प्रतिमाकी ओरका जो शुभराग है वह अशुभरागसे बचनेके लिये है। जैन अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव रागसे या परसे कदापि धर्म नहीं मानते। जैन तो आत्मस्वभावसे धर्म मानते हैं।

सम्यग्दृष्टि जीव आत्मस्वभावकी प्रतीति होने पर जब शुद्धस्वभावके अनुभवमें स्थिर नहीं रह सकता जब अशुभरागको छोड़कर उसके शुभराग आता है। और उस रागमें उपस्थित वीतराग प्रतिमा निमित्तरूप होती है। स्वयं अशुभ भावसे बचता है इतना उसे लाभ है, किन्तु प्रतिमासे अथवा अवशिष्ट रागसे यदि आत्माका लाभ माने तो वह मिथ्यादृष्टि है। जब सम्यग्दृष्टिको शुभराग होता है तब उसमें प्रतिमा निमित्तरूप होती है, यह न जाने तो भी वह मिथ्यादृष्टि है। इसमें निमित्तका ज्ञान करनेकी बात है, किन्तु यह नहीं है कि निमित्तसे कोई कार्य होता है।

आत्मस्वरूपकी पहचानके बाद जब तक स्वरूपकी पूरी भक्ति न हो अर्थात् वीतरागता न हो वहाँ तक बीचमें शुभराग आये बिना नहीं रहता। और शुभरागके निमित्त भी होते ही हैं। किन्तु जैन—



सम्यक्त्वी रागसे अथवा निमित्त से धर्म नहीं मानते। जो राग या निमित्तसे धर्म मानता है वह मिथ्यादृष्टि है।

निमित्त कहता है कि भले ही सम्यक्त्वी रागसे या निमित्तसे धर्म नहीं मानते, किन्तु यदि सामने सुई पड़ी हो तो सुईका ज्ञान होगा या केंचीका ? अथवा सामने आदमी का चित्र देखकर आदमीका ज्ञान होगा या घोड़ेका ? सामने जैसा निमित्त होगा वैसा ही तो ज्ञान होगा। इसका यह अर्थ हुआ कि निमित्तसे ही ज्ञान होता है, इसलिये निमित्तको ही बलवान मानना होगा। निमित्तका यह तर्क है। निमित्तका कथन बहुत लम्बा है। ऐसा अज्ञानी मानते हैं कि जो भी होता है वह निमित्तसे होता है।

उपादानको जाननेवाले ज्ञानी कहते हैं कि निमित्त से ज्ञान होता ही नहीं, किन्तु उपादानकी शक्तिसे ही होता है। ज्ञान तो अपनी स्मृतिसे होता है। सुईको देखनेसे अपने ज्ञानकी स्मृति नहीं हुई, सुईको देखनेका काम ज्ञानने किया या सुईने ? ज्ञानसे ही जाननेका कार्य हुआ है। यदि सुईसे ज्ञान होता हो तो अंधे आदमीके सामने सुई रखने पर उसे तत्सम्बन्धी ज्ञान होना चाहिये। किन्तु ऐसा नहीं होता, क्योंकि अंधमें वह शक्ति ही नहीं है। सुई तो जड़ है, जड़मेंसे ज्ञान नहीं आता। अज्ञानीकी दृष्टि पर-निमित्त पर होनेसे वह स्वाधीन ज्ञानको नहीं जानता, इसलिये वह मानता है कि परके कारणसे ज्ञान हुआ है; अज्ञानी उपादान स्वरूपकी बात भी नहीं पूछते। “चावल बिना अग्निके पक सकते हैं ? कदापि नहीं, इसलिये चावल अग्नि से पके या चावलसे ?” अग्निसे चावल पकते हैं यह अंधदृष्टिसे दिखाई देता है, किन्तु स्पष्टदृष्टिसे तो चावल चावल से ही पके हैं। पाकरूप अवस्था चावलमें ही हुई है अग्निमें नहीं। चावलमें ही

स्वतः पकनेकी शक्ति है इसलिये वे पके हैं, वे अग्नि अथवा पानीसे नहीं पके; इसीप्रकार रोटी भी स्वतः पकी है अग्नि अथवा तवेसे नहीं पकी है।

निमित्त अपनी युक्तिको रखता हुआ कहता है कि :—हे उपादान ! जगतमें यह कौन कहता है कि रोटी स्वतः पकी है, अग्निसे रोटी नहीं पकी। तू समस्त विश्वसे पूछ देख। 'गेहूँके परमाणुओंकी जब पक्की अवस्था होना थी तब अग्नि और तवा भी मौजूद था, किन्तु उससे रोटी नहीं बनी'; इसप्रकार की तेरी लम्बी-लम्बी बातें जगत्में कौन करता है ? सीधी और स्पष्ट बात है कि अग्निसे रोटी पकी है, भला ! इसमें क्या पूछता है ? इसलिये यह बात गलत है कि उपादानकी शक्तिसे ही कार्य होता है।

उपादान उत्तर देता है :—

उपादान विन निमित्त तू कर सके इक काज।

कहा भयौ जग ना लखै, जानत हैं जिनराज॥७॥

अर्थ :—उपादान कहता है कि अरे निमित्त ! एक भी कार्य बिना उपादानके नहीं हो सकता, इसे जगत् नहीं जानता तो क्या हुआ जिनराज तो उसे जानते हैं।

उपादान जिनराजको अपने पक्षमें रखकर कहता है कि हे निमित्त ! तू रहने दे। जगत्के प्रत्येक पदार्थके कार्य अपनी शक्तिसे ही हो रहे हैं, कोई पर उसे शक्ति नहीं देता। यदि जीव इसप्रकारके स्वरूपको समझे तो उसे अपने भावकी ओर देखनेका अवकाश (—अवसर) रहे और अपने भावमें दोषोंको दूर करके गुण ग्रहण करे, किन्तु यदि 'कर्म मुझे हैरान करते हैं, और सद्गुरु मुझे तार देंगे,'

इसप्रकार निमित्तसे कार्यका होना मानेगा तो उसमें कहीं भी स्वयं तो आया ही नहीं, उसमें अपनी ओर देखनेका अवकाश ही नहीं रहा और केवल पराधीन दृष्टि रह गई।

रोटी अग्निसे नहीं पकी, किन्तु निजमें ही वह विशेषता है कि वह पकी है। अग्नि और तवेके होने पर भी कहीं रेत नहीं पकती, क्योंकि उसमें वैसी शक्ति नहीं है। जो पक्व पर्याय हुई है, वह रोटीकी हुई है या तवेकी ? रोटी स्वयं उस पर्यायरूप हुई है, इसलिये रोटी स्वयं पकी है।

यदि शिष्यके ही उपादानमें समझनेकी शक्ति न हो तो गुरु क्या करें ? श्रीगुरु भले ही लाख प्रकारसे समझायें किन्तु शिष्यको अपनी शक्तिके बिना समझमें नहीं आ सकता, इसलिये उपादानके बिना एक भी कार्य नहीं हो सकता। निमित्तने कहा था कि जगत्के अंध प्राणी उपादानके स्वरूपको नहीं समझते तो क्या हुआ, परन्तु त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर मुझे जानते हैं। जगत्के बहुतसे अंध तुझे मानते हैं तो उससे तुझे क्या लाभ हुआ ? मुझे तो एक त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञदेव ही बस हैं। हजारों भेड़ोंके सामने एक सिंह ही पर्याप्त है। जहाँ सिंह आता है वहाँ सभी भेड़ें पूंछ दबाकर भाग जाती हैं, इसी प्रकार जगत्के अनन्त जीवोंका यह अभिप्राय है कि 'निमित्तसे काम होता है' किन्तु वे सब अज्ञानी हैं, इसलिये उनका अभिप्राय यथार्थ नहीं है और 'उपादानकी शक्तिसे ही सर्व कार्य होते हैं, यह माननेवाले थोड़े ही जीव हैं तथापि वे ज्ञानी हैं, उनका अभिप्राय सच है। सत्यका संख्याके साथ सम्बन्ध नहीं होता।

छप्पनके अकालमें पशुओंमें खड़े रहनेकी भी शक्ति नहीं रही थी। यदि उन्हें सहारा देकर भी खड़ा किया जाता तो भी वे गिर पड़ते

थे। जहाँ भूखे पशुमें निजमें ही खड़े रहनेकी शक्ति न हो वहाँ बाह्य आधारके बलसे कैसे खड़ा रखा जा सकता है, यदि उपादानमें ही शक्ति न हो तो किसी निमित्तके द्वारा कार्य नहीं हो सकता।

आत्माके स्वभावसे ही आत्माके सब काम होते हैं। पुण्य-पापके परिणाम स्वयं करनेसे होते हैं, स्वयं जैसे परिणाम करे वैसे होते हैं। दूसरे जीवोंका आशीर्वाद मिल जाय तो भला हो और पुण्यका समुद्र फटकर आत्माकी मुक्ति हो जाय यह बात गलत है। आत्माका कार्य पराधीन नहीं है। भगवानकी साक्षात् उपस्थितिमें भी उसे तारनेके लिये समर्थ नहीं है और शिरच्छेद करनेवाला शत्रु भी डुबानेके लिये समर्थ नहीं है। 'प्रत्येक पदार्थ सदा भिन्न है, मैं भिन्न आत्मा हूँ और तू भिन्न आत्मा है, मैं तुझे कुछ भी नहीं कर सकता, तू अपने भावसे समझे तो तेरा कल्याण हो' इस प्रकार भगवान तो स्वतंत्रताकी घोषणा करके सदा उपादान पर उत्तरदायित्व डालते हैं, उपादानकी जागृतिके बिना कदापि कल्याण नहीं होता ॥७॥

निमित्त कहता है कि :—

देव जिनेश्वर गुरु यती अरु जिन आगम सार।

इह निमित्तसे जीव सब पावत हैं भवपार ॥८॥

अर्थ :—निमित्त कहता है कि जिनेश्वरदेव, निर्ग्रंथ गुरु और वीतरागका आगम उत्कृष्ट है, इन निमित्तोंके द्वारा सभी जीव भवका पार पाते हैं।

जिनेश्वरदेव श्री सर्वज्ञ भगवानको माने बिना आत्माकी मुक्ति नहीं होती। किसी कुदेवादिको माननेसे मुक्ति नहीं होती, इसलिये पहले जिनेश्वरदेवको पहचानना चाहिये। इसप्रकार पहले निमित्तकी आवश्यकता आ जाती है; क्योंकि निमित्तकी आवश्यकता होती है,

इसलिये पचास प्रतिशत मेरी सहायतासे कार्य होता है, यह निमित्तका तर्क है।

यहाँ पर जीव जब अपना कल्याण करता है तब निमित्तके रूपमें श्री जिनेश्वरदेव ही होते हैं, उनके अतिरिक्त कुदेवादि तो निमित्तरूप कदापि नहीं होते—इतना सत्य है, किन्तु श्री जिनेश्वरदेव आत्माका कल्याण कर देते हैं अथवा पचास प्रतिशत सहायता करते हैं, यह बात ठीक नहीं है।

सच्चे देव, निर्ग्रंथ गुरु और त्रिलोकीनाथ परमात्माके मुखसे निकली हुई ध्वनि अर्थात् आगमसार इन तीन निमित्तोंके बिना मुक्ति नहीं होती। यहाँ पर 'आगमसार' कहा है। इसलिये आगमके नाम पर दूसरी अनेक पुस्तकें प्रचलित हैं उनकी यहाँ पर बात नहीं है, किन्तु सर्वज्ञकी वाणीसे परम्परा आये हुए सत्शास्त्रोंकी बात है। अन्य कोई कुदेव, कुगुरु अथवा कुशास्त्र तो सत्का निमित्त भी नहीं हो सकता। सच्चे देवादि ही सत्के निमित्त हो सकते हैं। इतनी बात तो बिलकुल सच है, उसीको पकड़कर निमित्त कहता है कि भाई उपादान ! अपने ही एकांतको नहीं खींचना चाहिये, कुछ निमित्तका भी विचार करना चाहिये अर्थात् वह कहना चाहता है कि निमित्त भी सहायक होता है।

निमित्तके तर्कका एक अंश इतना सत्य है कि :— आत्मकल्याणमें सच्चे देव, गुरु, शास्त्र ही निमित्तरूपमें उपस्थित होते हैं, उनकी उपस्थितिके बिना त्रिकालमें भी कोई मुक्ति नहीं पा सकता। सभी मार्ग समान हैं यों माननेवाला तीन काल और तीन लोकमें सम्यग्दर्शनको नहीं पा सकता, प्रत्युत वह मिथ्यात्वके महापापकी पुष्टि करता है। अर्थात् सर्वज्ञ वीतरागदेव, साधक संत,

मुनि और सर्वज्ञकी वाणी ही निमित्त होती है, इतना तो सत्य है, किन्तु उससे आत्माका कल्याण नहीं होता। वह आत्महितमें सहायक नहीं है, कल्याण तो आत्मा स्वयं स्वतः समझे तभी होता है।

समझनेकी शक्ति तो सभी आत्माओंमें त्रिकाल है। जब उस शक्तिकी संभाल करके आत्मा समझता है तब निमित्तके रूपमें परवस्तु सच्चे देव इत्यादि ही होते हैं। कुदेवादिको मानता हो और उसे सच्ची समझ हो यह नहीं हो सकता, इस बातको आगे रखकर निमित्त कहता है कि पहले मेरी ही आवश्यकता है, मुझसे ही कल्याण होता है।

उपादान उसके इस तर्कका खंडन करता हुआ कहता है कि :—

यह निमित्त इह जीवके मिल्यो अनन्तीवार।

उपादान पलट्यो नहीं तो भटक्यो संसार॥१॥

**अर्थ** :—उपादान कहता है कि यह निमित्त इस जीव को अनन्तबार मिला, किन्तु उपादान-जीव स्वयं नहीं बदला, इसलिये वह संसारमें भटकता रहा।

यदि देव, गुरु, शास्त्रका निमित्त आत्मकल्याण कर देता हो तो यह जीव साक्षात् त्रिलोकनाथ के पास अनन्तबार गया फिर भी समझे बिना ज्योंका त्यों वापिस आ गया। उपादान अपनी शक्तिसे नहीं समझा। भगवान कोई अपूर्व स्वरूप कहते हैं यों परमार्थको समझनेकी चिन्ता नहीं की और व्यवहारकी स्वयं मानी हुई बातके आने पर यह मान लेता है कि मैं यह कहता था और यही भगवानने कहा है। इसप्रकार अपने गज (नाप) से भगवानका नाप करके विपरीत पकड़को ही दृढ़ करता है; निमित्त भले ही सर्वोत्कृष्ट हो तथापि उपादान न बदले तो उसे सत् समझमें नहीं आता। अनन्तबार

सच्चे रत्नादिककी सामग्रीको जुटाकर साक्षात् तीर्थंकरकी पूजा की, किन्तु निमित्तके अवलम्बन से रहित अपने स्वाधीन स्वरूपको नहीं समझा, इसलिये धर्म नहीं हुआ, इसमें तीर्थंकर क्या करें !

सच्चे ज्ञानी गुरु और सत् शास्त्र भी अनन्तबार मिले किन्तु स्वयं अंतरंग स्वभावको समझकर अपनी दशाको नहीं बदला, इसलिये जीव संसारमें ही भटकता रहा ।

निमित्तने कहा था कि :—देव, गुरु, शास्त्रके निमित्त को पाकर जीव भव पार हो जाता है, उसके विरोधमें उपादानने कहा कि उपादान—जीव स्वयं धर्मको नहीं समझा जो सच्चे देव, गुरु, शास्त्रके मिलने पर भी संसारमें परिभ्रमण करता है । यदि जीव स्वयं सत्को समझ ले तो देव, गुरु, शास्त्रको समझनेका निमित्त कहा जाये, किन्तु यदि जीव समझे ही नहीं तो निमित्त कैसे कहलाये । यदि उपादान स्वयं कार्यरूप हो तो प्रस्तुत वस्तुको निमित्त कहा जा सकता है, किन्तु उपादान स्वयं कार्य रूपमें हो ही नहीं तो निमित्त भी नहीं कहा जा सकता । प्रत्येक लटमें तेल डालकर मस्तक सुन्दर बनाया, यह तभी तो कहा जायेगा जब मस्तकमें बालकी लटें हों, किन्तु यदि सिरमें बाल ही न हों तो उपमा कहां लगेगी ! इस प्रकार प्रस्तुत वस्तुको 'निमित्त' की उपमा तभी दी जा सकती है जब उपादान स्वयं जागृत होकर समझे, किन्तु यदि उपादान ही न हो तो निमित्त किसका कहलाये ? इसलिये कार्य तो उपादानके ही आधीन होता है ।

सच्चे देव, गुरु, शास्त्रके निमित्तके बिना कदापि सत्य नहीं समझा जा सकता, किन्तु इससे अपनी समझने की तैयारी हो तब देव, गुरु, शास्त्रको ढूँढनेके लिये जाना पड़े ऐसा उपादान पराधीन नहीं है । हाँ, ऐसा नियम अवश्य है कि जहाँ अपनी तैयारी होती है ।

वहाँ निमित्त का योग अवश्य होता ही है। धर्मक्षेत्र महाविदेहमें बीस महा धर्मधुरंधर तीर्थंकर तो सदा विद्यमान होते हैं। महाविदेहमें तीर्थंकर न हों यह कदापि नहीं हो सकता। यदि अपनी तैयारी हो तो चाहे जहाँ सत् निमित्तका योग मिल ही जाता है और यदि अपनी तैयारी न हो तो सत् निमित्तका योग मिलने पर भी सत्का लाभ नहीं होता। यहाँ पर संवादमें निमित्तकी ओरसे तर्क रखनेवाला जीव ऐसा लिया है जो सयाना है, समझनेके लिये तर्क करता है और जो अन्तमें उपादानकी सब यथार्थ बातोंको स्वीकार करेगा। वह ऐसा हटाग्रही नहीं है कि अपनी ही बात को खींचता रहे। यहाँ पर ऐसे ही जीवकी बात है जो सत्य-असत्यका निर्णय करके सत्यको तत्काल ही स्वीकार करे।

देहादिकी क्रियासे मुक्ति होती है अथवा पुण्यसे धर्म होता है, इस प्रकार जीवने अपनी विपरीत मान्यता बना रखी है, ऐसी स्थितिमें भगवानके पास जाकर उनका उपदेश सुनकर भी जीवको धर्मका किंचित्मात्र भी लाभ नहीं हुआ। भगवान तो कहते हैं कि आत्मा देहकी क्रिया कर ही नहीं सकता और पुण्य विकार है उससे आत्मधर्म नहीं हो सकता, यह बात उसके ज्ञानमें नहीं जमी। यदि स्वयं समझे तो लाभ हो और तब भगवान इत्यादिको निमित्त कहा जाय। सच्चे निमित्तके बिना ज्ञान नहीं होता। किन्तु सच्चे निमित्त के होने पर भी स्वयं न समझे तो ज्ञान नहीं होता। तात्पर्य यह है कि निमित्तसे ज्ञान नहीं होता। तो फिर निमित्तने क्या किया ? यह तो मात्र उपस्थित रहकर अलग रहा।

सामान्यतया लोग अनेकबार कहा करते हैं कि “मैंने तो उसे बहुत कहा किन्तु वह ठप्प हो गया है” अर्थात् मेरे कहनेका उस



पर किंचित्मात्र भी असर नहीं हुआ, किन्तु अरे भाई यदि वह मानता है तो अपने भावसे मानता है और यदि नहीं मानता है तो अपने भावसे वैसा करता है। किसी पर किसीका कोई असर होता ही नहीं है। निमित्त और उपादान दोनों स्वतंत्र पदार्थ हैं।

जीवको समझनेके निमित्त अनन्तबार मिले तथापि अपनी उपादान शक्तिसे स्वयं नहीं समझा, इसलिये संसारपरिभ्रमण किया इससे सिद्ध होता है कि निमित्तका कोई असर उपादान पर नहीं है।

यहाँ पर उपादान-निमित्तका संवाद चल रहा है। यहाँ तक ९ दोहोंकी व्याख्या की जा चुकी है। उपादानका अर्थ क्या है? जो अपने स्वभावसे काम करे सो उपादान है। और उस कामके समय साथ ही दूसरी वस्तु उपस्थित हो वह निमित्त है। उपादान और निमित्त दोनों जैसे हैं उनका वैसा ही निर्णय करना भी एक धर्म है। धर्म दूसरे भी हैं; सच्चे निर्णय पूर्वक राग-द्वेषको दूर करके स्थिरता करना सो दूसरा चारित्रधर्म है। आत्मवस्तुमें अनन्त धर्म हैं। धर्म अर्थात् स्वभाव। आत्माका जो भाव संसारके विकारभावसे बचकर अविकारी स्वभावको धारण करता है वह आत्माका धर्म है, इसलिये स्वभावको समझना ही प्रथम धर्म है। जो जीव स्वभावको नहीं समझता उसे जन्म-मरणके नाशका और मुक्तिदशाके प्रगट होनेका लाभ नहीं मिलता। जो स्वाधीन स्वभावको नहीं समझे ऐसे अज्ञानी जीव यह मानते हैं कि यदि दूसरी वस्तु हो तो आत्माका कल्याण हो, उनका निर्णय ही विपरीत है। उन्हें आत्मकल्याणके सच्चे उपायकी खबर नहीं है।

जब आत्मकल्याणकी भावनावाला जीव सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके द्वारा आत्माका निर्णय करता है तब सच्चे देव, शास्त्र

और गुरुकी निमित्तरूप उपस्थिति होती है, किंतु वे शास्त्र, गुरु आत्माका ज्ञान नहीं करा देते। यदि स्वयं अपने ज्ञानसे यथार्थ समझ सके तो समझा जा सकता है। बिना ज्ञानके छह-छह महीने तक उपवास किये फिर भी सच्ची समझ नहीं हो पाई, इसलिये आत्मकल्याण नहीं हुआ।

प्रश्न :—यह सब सूक्ष्म बातें हमारे किस कामकी ?

उत्तर :—यह आत्माकी बात है, आत्मकल्याण करना हो तो यह जान लेना चाहिये कि कल्याण कहाँ होता है और कैसे होता। अपना कल्याण अपने ही स्वभावकी शक्तिसे होता है परसे नहीं होता। यदि अपने स्वभावको समझ ले तो सच्चा श्रद्धाका लाभ हो और विपरीत श्रद्धासे होनेवाली महा हानि दूर हो; यही सर्व प्रथम कल्याण है।

आत्माका निर्णय सच्चे देव, शास्त्र, गुरुसे प्रगट होता है। जब यह निमित्तसे कहा तब उपादानने उसका उत्तर दिया कि भाई ! यह निमित्त तो अनन्तबार जीवको मिले, किंतु स्वयं स्वभावकी महिमाको लाकर असंग आत्मतत्त्वका निर्णय नहीं किया, इसलिये संसारमें परिभ्रमण करता रहा। तात्पर्य यह है कि कोई निमित्त आत्माको लाभ नहीं करता।

हे भाई ! यदि पर निमित्तसे आत्माके धर्म होता है ऐसी परद्रव्याश्रित दृष्टि करोगे तो परद्रव्य तो अनन्त-अपार हैं, उसकी दृष्टिमें कहीं भी अन्त नहीं आयेगा अर्थात् अनन्त पर पदार्थकी दृष्टिसे छूटकर स्व-स्वभावको देखनेका अवसर कभी भी नहीं आयेगा। किन्तु मैं परद्रव्योंसे भिन्न हूँ, मुझमें परका प्रवेश नहीं है, मेरा कल्याण मुझमें ही है ऐसी स्वाधीन द्रव्यदृष्टि करने पर अनन्त परद्रव्यों परसे

दृष्टि छूट जाती है और स्वभावदृष्टिकी दृढ़ता होती है तथा स्वभावकी ओरकी दृढ़ता कल्याणका मूल है। परवस्तु तीन काल और तीन लोकमें हानि-लाभ करनेके लिये समर्थ नहीं है। यदि अपने भावमें स्वयं उलटा रहे तो परिभ्रमण करता है और यदि सीधा हो तो मुक्त हो जाता है।

प्रश्न :—पैसा, शरीर इत्यादि जो हमारे हैं वे तो हमारा लाभ करते हैं या नहीं ?

उत्तर :—मूल सिद्धान्तमें ही अन्तर है, पैसा इत्यादि तुम्हारे हैं ही नहीं। पैसा और शरीर तो जड़ हैं, अचेतन हैं, पर हैं। आत्मा चैतन्य ज्ञानस्वरूप है। जड़ और चेतन दोनों वस्तुएँ त्रिकाल भिन्न ही हैं, कोई एक-दूसरेकी हैं ही नहीं, पैसा इत्यादि आत्मासे भिन्न हैं, वे आत्माके सहायक नहीं हो सकते। किन्तु सच्चा ज्ञान आत्माका अपना होनेसे आत्माकी सहायता करता है। पैसा, शरीर इत्यादि कोई भी वस्तु आत्माके धर्मका साधन तो है ही नहीं, साथ ही उससे आत्माके पुण्य-पाप नहीं होते। 'पैसा मेरा है' ऐसा जो ममत्वभाव है सो अज्ञान है पाप है। और यदि उस ममत्वको कम करे तो उस भावसे पुण्य होता है। पैसेके कारणके पाप या पुण्य नहीं है, पैसा मेरा है और मैं उसे रखूँ ऐसा जो ममत्वरूप भाव है सो महा पाप है। वास्तवमें यदि ममत्वको कम करे तो दान इत्यादि शुभ कार्योंमें लक्ष्मीको व्यय करनेके भाव हुये बिना न रहे। यहाँ पर तो निमित्त-उपादानके स्वरूपको समझनेका अधिकार चल रहा है।

निमित्तकी ओरसे तर्क करनेवाला जीव शास्त्रोंका ज्ञाता है। शास्त्रोंकी कुछ बातें उसने जानी हैं, इसलिये उन बातोंको उपस्थित करके वह तर्क करता है। जिसने हिसाब लिखा हो उसे बीचमें कुछ

पूछना होता है और वह प्रश्न कर सकता है, किन्तु जिसने अपनी सिलेठ कोरी रखी हो और कुछ भी न लिखा हो तो वह क्या प्रश्न करेगा ? इसीप्रकार जिसने कुछ शास्त्राभ्यास किया हो अथवा शास्त्र-श्रवण करके कुछ बातोंको समझा हो तो वह तर्क उपस्थित करके प्रश्न कर सकता है, किन्तु जिसने कभी शास्त्रको खोला ही न हो और क्या चर्चा चल रही है इसकी जिसे खबर ही न हो, वह क्या प्रश्न करेगा ?

यहाँ पर शिष्य शास्त्र पढ़कर प्रश्न करता है कि हे उपादान ! तुम कहते हो कि आत्माका धर्म अपने उपादानसे ही होता है, निमित्त कुछ नहीं करता, किन्तु भव्य जीवोंको जो क्षायिकसम्यक्त्व होता है वह तो केवली-श्रुतकेवलीके सान्निध्यमें ही होता है, यह शास्त्रोंमें कहा है तब वहाँ निमित्तका जोर आया नहीं ?

निमित्त इस प्रकारका तर्क उपस्थित करता है—

कै केवलि कै साधुके निकट भव्य जो होय।

सो क्षायक सम्यक् लहै यह निमित्त बल जोय॥१०॥

अर्थ :—निमित्त कहता है कि यदि केवली भगवान अथवा श्रुतकेवली मुनिके पास भव्य जीव हो तो ही क्षायिक सम्यक्त्व प्रगट होता है यह निमित्तका बल देखो ! (यहाँ पर तर्क उपस्थित करते हुए निमित्तकी भाषा लूली मालूम होती है, “आसन्नभव्य जीव हो तो ही क्षायिक सम्यक्त्व प्रगट होता है,” इसप्रकार भव्य जीवके कहते ही उपरोक्त तर्कके शब्दोंमें यह बात स्पष्ट हो जाती है कि योग्यता उस जीवकी अपनी ही है, इसलिये क्षायिक सम्यक्त्वको प्राप्त करता है—यह बात तर्कके शब्दोंमें आ जाती है) क्षायिकसम्यक्त्व आत्मा सम्यक्की वह प्रतीति है कि जो

केवलज्ञानको लेकर ही रहती है, अर्थात् वह ऐसी आत्म-प्रतीति है जो कभी पीछे नहीं रहती। श्रेणिकराजा पहले नरकसे निकलकर भावी चौबीसीके प्रथम तीर्थकर होंगे, उन्हें ऐसा क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त है। क्षायिक सम्यग्दृष्टिको आत्माकी अति दृढ़ श्रद्धा होती है कि तीन लोक बदल जाय और इन्द्र उसे डिगानेके लिये उतर आये तो भी उसकी श्रद्धा नहीं बदलती। उसे अप्रतिहत श्रद्धा होती है, वह चौदह ब्रह्माण्डसे हिलाया नहीं हिलता और त्रिलोकमें उथल-पुथल हो जाय तो भी मनमें भय संदेह नहीं लाता, ऐसा निश्चल सम्यक्त्व तो क्षायिक सम्यक्त्व है।

निमित्तका वकील तर्क करता है कि श्रेणिकराजा, भरत चक्रवर्ती इत्यादिको केवलीके निकट ही क्षायिक सम्यक्त्व हुआ था, देखो यह है निमित्तका जोर। शास्त्रोंमें लिखा है कि तीर्थकर भगवान, केवली भगवान अथवा श्रुतकेवली (—जिनशासनके बाह्य और अन्तरंग श्रुतज्ञानमें परिपूर्ण मुनिराज) जहाँ विराजित हों वहाँ उनके चरणकमलमें ही क्षायिक सम्यक्त्व होता है, उनके अभावमें नहीं होता, इसलिये निमित्त ही बलवान् है। अन्य निमित्त हो तो क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता। हे उपादान ! यदि तेरी ही शक्तिसे काम होता है तो तीर्थकरादिके अभावमें क्षायिक सम्यक्त्व क्यों नहीं होता ? निमित्त नहीं है, इसलिये नहीं होता अर्थात् निमित्त ही बलवान है। इसप्रकार निमित्तका तर्क है। वह तर्क क्योंकर गलत है, वह आगेके दोहेमें बताया जायेगा।

तीर्थकर केवली अथवा श्रुतकेवलीके समीप ही सब जीवोंको क्षायिक सम्यक्त्व होता है—ऐसा एकान्त नहीं है कई जीव स्वयं श्रुतकेवली होकर स्वतः क्षायिक सम्यक्त्व प्रगट करते हैं। क्षायिक

सम्यक्त्व निमित्तके बलसे हुआ है या उपादानके बलसे ? इसे समझनेमें निमित्त पक्षने जो भूल की है वह आगे बताई जायेगी।

प्रथम एकबार सत् निमित्तके पाससे स्वयं योग्य होकर श्रवण किया हो, किन्तु उस समय सम्यक्त्व प्राप्त न किया हो तो भी बादमें सत् निमित्त समीप न होने पर भी जीव स्वयं अंतरंगसे जागृत होकर उपशम-क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है, परंतु क्षायिक सम्यक्त्व तो निमित्तकी उपस्थितिमें ही होता है साक्षात् तीर्थकरकी सभा हो और तत्त्वोंके गंभीर न्यायकी धारा प्रवाहित हो रही हो, उसे सुनने पर जीवको स्वभावकी परम महिमा प्राप्त होती है। अहा ! ऐसा परिपूर्ण ज्ञायक स्वरूपी भगवान मैं ! एक विकल्पका अंश भी मेरा स्वरूप नहीं है, मैं स्वतंत्र स्वाधीन परिपूर्ण हूँ। इसप्रकार अंतरसे निज आत्मस्वभावकी अप्रतिहत प्रतीति जागृत होने पर जीवको क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त होता है; वहाँ तीर्थकर केवली अथवा श्रुतकेवली निमित्त हैं, इसलिये निमित्त यह कहता है कि आत्माको क्षायिक सम्यक्त्वमें निमित्त सहायक होना ही चाहिये, यह मेरा बल है।

इसके उत्तरमें उपादान कहता है कि :—

केवलि अरु मुनिराज के पास रहे बहु लोय।

पै जाको सुलट्यो धनी क्षायिक ताकों होय॥११॥

—उपादान कहता है कि केवली और श्रुतकेवली भगवानके पास बहुत से लोग रहते हैं, किन्तु जिसका धनी (आत्मा) सुलटा होता है उसीको क्षायिक सम्यक्त्व होता है।

उपादान निमित्त से कहता है कि अरे ! सुन सुन ! केवली भगवान और उस भवमें मोक्ष जानेवाले श्रुतकेवलियों के निकट तो बहुतसे लोग रहते हैं, बहुतसे जीव साक्षात् तीर्थकरके अति निकट

आ जाये, किंतु उन सबको क्षायिक सम्यक्त्व नहीं हुआ। जिसका आत्मा स्वयं सुलटा हुआ वह स्वयं अपनी शक्तिसे क्षायिक सम्यक्त्व पा गया, और जिसका आत्मा स्वयं सुलटा नहीं हुआ वह क्षायिक सम्यक्त्व नहीं पा सका। इससे सिद्ध हुआ कि उपादानसे ही क्षायिक सम्यक्त्व होता है, निमित्तसे नहीं।

जो जीव धर्मको समझते हैं वे अपने पुरुषार्थसे समझते हैं। त्रिलोकीनाथ तीर्थङ्कर जिनके यहाँ जन्म लेते हैं वे माता-पिता मोक्षाधिकारी होते ही हैं, तथापि वे अपने स्वतंत्र पुरुषार्थसे मोक्ष प्राप्त करते हैं। कुलके कारण अथवा तीर्थंकर भगवानके कारण मोक्ष नहीं पाते।

तीर्थंकर भगवानकी सभामें तो बहुतसे जीव अनेक बार गये, किंतु जो स्वयं कुछ नहीं समझे वे ज्योंके त्यों वापिस आ गये। एक भी यथार्थ बात को अंतरंगमें नहीं बिठाया और जैसा गया था वैसा ही अज्ञानतासे वापिस आ गया। इतना ही नहीं, किंतु कई जीव तो अपनी विपरीत बुद्धिके कारण यह तर्क करते हैं कि जो यह कहते हैं क्या यही एक मार्ग है और जगतके समस्त मार्ग व्यर्थ हैं—गलत हैं ?

भगवानकी सभामें उपशम-क्षयोपशम सम्यक्त्वी जीव होते हैं वे भी यदि दृढ़ पुरुषार्थके द्वारा स्वयं क्षायिक सम्यक्त्व करें तब ही होता है। और बहुतसे स्वयं नहीं करते, इसलिये उन्हें नहीं होता। तात्पर्य यह है कि निमित्तका बल है ही नहीं। यदि निमित्तमें कोई शक्ति होती तो जो भगवानके पास गये उन्हें क्षायिक सम्यक्त्व क्यों नहीं हुआ ? समवसरणमें जो जीव भगवानके पास जाते हैं वे सभी समझ ही जाते हों सो बात नहीं है, किंतु जिसका धनी (आत्मा)

समझकर सुलटा होता है उसे ऐसी आत्मप्रतीति प्रगट होती है कि जो फिर कभी पीछे नहीं हटती।

अहो ! परम महिमावंत परिपूर्ण आत्मस्वभाव ! इस स्वभावका अवलोकन करते-करते ही केवलज्ञान होता है—जो जीव सुलटा होकर ऐसी दृढ़ प्रतीति करता है उसीके होता है, किंतु जो भगवानकी वाणीको सुनकर भी सुलटा नहीं होता उसे सम्यक्त्व नहीं होता। इससे सिद्ध है कि निमित्तका कोई बल नहीं है। जिसके अपने पैरों में शक्ति नहीं है वह दूसरेके आधार पर कैसे खड़ा रह सकता है ? इसीप्रकार अपने आत्माकी शक्तिके बिना यथार्थ समझके बिना साक्षात् भगवानके पास जाकर भी अपने भीतर में विशेष स्वच्छंदी हुआ, इसलिये सच्चा ज्ञान नहीं हुआ। इसलिये भगवानके पास जानेसे क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता, किंतु वह उपादानकी जागृतिसे ही होता है।

अब निमित्त प्रकारान्तरसे कहता है—

हिंसादिक पापन किये जीव नरकमें जाँहि।

जो निमित्त नहिं कामको तो इम काहे कहाहिं॥१२॥

अर्थ :—निमित्त कहता है कि यदि निमित्त कार्यकारी न हो तो फिर यह क्यों कहा जाता है कि हिंसादिक पाप करनेसे जीव नरक में जाता है ?

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रहादिसे जीव नरकमें जाता है। इसमें निमित्तका ही बल है। हिंसामें पर जीवका, झूठमें भाषाका, परिग्रहमें परवस्तुका, चोरीमें रुपया-पैसाका और कुशीलमें शरीरादि निमित्तकी जरूरत पड़ती है या नहीं ? इससे स्पष्ट है कि निमित्त ही



नरकमें ले जाता है। परवस्तुके निमित्तसे ही हिंसादि पाप होते हैं; केवल आत्मासे हिंसा, चोरी आदि पाप कर्म नहीं हो सकते। इसलिये यदि निमित्तका बल न हो तो हिंसादि करनेवाले नरकमें जाते हैं, यह क्योंकर बनेगा ? परवस्तु ही उनके नरकका कारण होती है। इसलिये वहाँ निमित्तका बल है या नहीं, इस प्रकार निमित्तने तर्क उपस्थित किया।

उसका समाधान करता हुआ उपादान कहता है :—

हिंसामें उपयोग जहाँ, रहे ब्रह्मके रच।

तेई नरकमें जात हैं, मुनि नहिं जाहिं कदाच॥१३॥

अर्थ :—हिंसादिमें जिसका उपयोग (चैतन्यपरिणाम) हो और जो आत्मा उसमें रचा-पचा रहे वही नरकमें जाता है। भावमुनि कदापि नरकमें नहीं जाते।

पर जीवकी हिंसा और जड़का परिग्रह इत्यादिमें जीवको यदि ममत्वरूप अशुभभाव होता है तो ही वह नरकमें जाता है। किसी पर वस्तुके कारणसे अथवा पर जीव मर गया इस कारणसे कोई जीव नरकमें नहीं जाता, किंतु जिन जीवोंका उपयोग अशुभ परिणामोंमें लीन हो रहा है वे ही नरकमें जाते हैं। पर जीवके मरनेसे अथवा राजपाटके अनेक संयोग मिलनेसे जीव नरकमें नहीं जाता, किंतु मैंने राज किया, मैंने पर जीवको मारा, यह रुपया-पैसा मेरा है, इस प्रकारके ममत्व-परिणामसे ही जीव नरकमें जाता है। भावमुनि कभी भी नरकमें नहीं जाते। कभी मुनिके पैरके नीचे कोई जीव आ जाय और दबकर मर जाय तो भी सच्चे मुनि नरकमें नहीं जाते, क्योंकि उनके विपरीतभाव-हिंसक परिणाम नहीं हैं; विपरीत भाववाला नरकमें जाता है, किंतु कोई निमित्तवाला नरकमें नहीं जाता।

प्रश्न :—आपने कहा कि निमित्तवाला नरकमें नहीं जाता, तब बहुतसा रुपया-पैसा इत्यादि परिग्रह रखनेमें कोई हानि तो नहीं है ?

उत्तर :—निमित्त दोषका कारण नहीं है, किन्तु अपना ममत्वभाव अवश्य ही दोषका कारण है। जो पैसा इत्यादि रखनेका भाव हुआ वह कहीं बिना ममताके होता होगा ? ममता ही पापभाव है। बहुत रुपया-पैसासे अथवा पर जीवके मरनेसे आत्मा नरकमें नहीं जाता, किन्तु पर जीवको मारनेका हिंसकभाव और अधिक रुपया-पैसा रखनेका तीव्र ममत्व भाव ही जीवको नरकमें ले जाता है। किसीके पास एक ही रुपया हो, किन्तु उसके ममत्वभाव अधिक हो तो वह नरकमें जाता है और दूसरेके पास करोड़ों रुपयोंकी सम्पत्ति हो तथापि ममत्वभाव अल्प हो तो वह नरकमें नहीं जाता, अर्थात् निमित्तके संयोग पर आधार नहीं है, किन्तु उपादानके भावपर आधार है; यदि गृहस्थ हिंसादिक तीव्रपाप-कषाय न करे तो नरकमें नहीं जाता और अज्ञानी त्यागी भी यदि तीव्र कलुषित परिणाम करे तो वह नरकमें जाता है।

क्षायिक सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा चक्रवर्ती राजा हो और लड़ाईमें हजारों मनुष्योंके संहारके बीच खड़ा हो तथा स्वयं भी बाण छोड़ रहा हो तथापि यदि उसके अन्तरंगमें यह प्रतीति है कि यह मेरा स्वरूप नहीं है, मैं पर जीवका कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं हूँ, मेरी अस्थिरताके कारण मुझे राग वृत्ति आ जाती है वह भी मेरा स्वरूप नहीं है, ऐसा भान होनेसे वह नरकमें नहीं जाता, इसलिये स्पष्ट है कि पर जीव की हिंसा नरकका कारण नहीं है, किन्तु अन्तरंगका अशुभभाव ही नरकका कारण है।

निमित्तने बारहवें दोहेमें यह तर्क उपस्थित किया था कि “निमित्तसे पाप होता है” किन्तु अब वह यह तर्क उपस्थित करता है कि ‘निमित्तसे पुण्य होता है और जीव सुखी होता है’ यथा:—

दया दान पूजा किये जीव सुखी जग होय।

जो निमित्त झूठो कहो, यह क्यों माने लोय॥१४॥

अर्थ :—निमित्त कहता है कि दया, दान, पूजा करनेसे जीव जगतमें सुखी होते हैं। यदि आपके कथनानुसार निमित्त झूठा हो तो लोग उसे क्यों मानेंगे ?

पर जीवकी दया, द्रव्यादिका दान और भगवानकी पूजा इत्यादिसे जीवके पुण्यबंध होता है, इसप्रकार दयामें पर जीवका निमित्त, दानमें द्रव्यका निमित्त और पूजामें भगवानका निमित्त है तथा इस पर निमित्तसे जीव पुण्यको बाँधकर जगतमें सुखी होता है। आप कहते हैं कि उपादान स्वतन्त्र है और पुण्यसे या परवस्तुसे सुख नहीं होता, किन्तु यह तो प्रत्यक्ष है कि दया इत्यादिसे पुण्य करे तो अच्छी सामग्री मिलती है और जगतमें जीव सुखी होता है। यदि निमित्तसे सुख न मिलता हो तो यह कैसे बने ? यह निमित्त पक्षका तर्क है। इसमें तीन प्रकारसे निमित्तका पक्ष स्थापित हुआ।

(१) पर निमित्तसे पुण्य होता है (२) पुण्य करनेसे बाह्य वस्तु मिलती है (३) बाह्य वस्तु मिलनेसे जीवको सुख मिलता है। इसप्रकार समस्त \*जगत् पुण्यके संयोगमें अपनेको सुखी मानता है, इसलिये निमित्तका ही बल है।

\* ‘समस्त जगत’ से जगतके सभी अज्ञानी जीव समझना चाहिये। ज्ञानीजन जगतसे परे हैं, वे अपने स्वभावमें हैं। ‘समस्त जगत’ कहने पर यहाँ उनका समावेश नहीं होता।

उपादान पक्षने निमित्त पक्षके अभी तकके समस्त तर्कोंको जिस प्रकार खंडित किया है उसीप्रकार इस तर्कका भी खण्डन करता हुए कहता है कि :—

दया, दान, पूजा भली जगत माहिं सुखकार।

जहँ अनुभवको आचरण तहँ यह बन्ध विचार॥१५॥

अर्थ :—उपादान कहता है—दया, दान, पूजा इत्यादि भले ही जगतमें बाह्य सुविधा दें, किन्तु जहाँ अनुभवके आचरण पर विचार करते हैं वहाँ यह सब (शुभभाव) बन्ध है (धर्म नहीं)।

पर जीवकी दयामें रागको कम करनेसे, दानमें तृष्णा को कम करनेसे और पूजा-भक्तिमें शुभराग करनेसे जो पुण्यबन्ध होता है वह जगतमें संसारके विकारी सुखका कारण है, किन्तु वास्तवमें तो वह दुःख ही है। सच्चे सुखके स्वरूपको जाननेवाले सम्यग्ज्ञानी उस पुण्यको और उसके फलको सुख नहीं मानते। उस पुण्यभागसे रहित अपने शुद्ध पवित्र आत्माका अनुभव ही सच्चा सुख है, पुण्यभावसे तो आत्माको बन्ध होता है, इसलिये वह दुःख ही है और उसका फल दुःखका ही निमित्त है, पुण्य तो आत्माके गुणको रोकता है और जड़का संयोग कराता है, उसमें आत्माके गुणका लाभ नहीं होता। यदि यह यथार्थ समझके द्वारा आत्माको पहिचानकर उसका अनुभव करे तो परमसुख और सच्चा लाभ हो, इसमें पुण्य और निमित्त [पुण्यका फल] इन दोनोंसे सुख होता है, यह बात उड़ा दी गई है। पुण्यके फलके रूपमें बाह्यमें जो कुछ संयोग मिलता है उसे अज्ञानी जीव सुख मानता है, किन्तु बाह्य सामग्रीसे और जड़में आत्माका लाभ अथवा सुख किंचित् मात्र भी नहीं है।

निमित्तने कहा था कि पुण्यसे जीव सुखी होता है, यहाँ उपादान

कहता है कि किसी भी प्रकारका जो पुण्य परिणाम होता है वह आत्माको बांधता है, आत्माके अविकारी धर्मको रोकता है। इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिये कि अशुभसे बचनेके लिये शुभभाव न किये जाय, किन्तु यह समझना चाहिये कि वह पुण्य-परिणाम आत्मधर्ममें-सुखमें सहायक नहीं है। आत्माकी पहिचान करनेसे ही धर्म होता है, किन्तु अधिकाधिक पुण्य करनेके वह आत्माके धर्मके लिये निमित्तरूप सुख होगा यह कदापि नहीं हो सकता। उपादान स्वरूप आत्माका ही बल है निमित्तका नहीं।

देखो तो इस बाल-बच्चों वाले गृहस्थने संवत् १७५० में उपादान-निमित्तके स्वरूपको कितना स्पष्ट किया था। सभी पहलुओंसे तर्क उपस्थित किये हैं। जैसे किसीका किसी के साथे कोई झगड़ा पड़ा हो तो वह उसके विरोधमें तर्क करके दावा दायर करता है और नीचेकी अदालतमें असफल होने पर हाईकोर्टमें जाता है और वहाँ पर भी असफल होने पर प्रिवी कौंसिलमें अपील करता है और इसप्रकार तमाम शक्य प्रयत्न करता है; उसी प्रकार यहाँ पर निमित्त भी नये-नये तर्क उपस्थित करता है, उलट-पुलटकर जितनी बन सकती है वे सब दलीलें रखता है, किन्तु उसका एक भी तर्क उपादानके सामने नहीं टिक सकता। उपादानकी तो एक ही बात है कि आत्मा अपने उपादानसे स्वतंत्र है, आत्माकी सच्ची श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता ही कल्याणका उपाय है, दूसरा कोई उपाय नहीं है। अन्तमें निमित्त और उपादान दोनोंकी युक्तियोंको भली-भाँति जानकर सम्यग्ज्ञानरूपी न्यायाधीश अपना यथार्थ निर्णय देगा, जिसमें उपादानकी जीत और निमित्तकी हार होगी।

अभी तक निमित्तने अपनेको उपादानके सामने बलवान सिद्ध

करनेके लिये अनेक प्रकारके तर्क उपस्थित किये और उपादानने न्यायके बलसे उसके सभी तर्कोंका खंडन कर दिया है। अब निमित्त नये प्रकारका तर्क उपस्थित करता है।

यह तो बात प्रसिद्ध है सोच देख उर माँहि।

नरदेहीके निमित्त विन जिय क्यों मुक्ति न जाँहि॥१६॥

अर्थ :—निमित्त कहता है कि यह बात तो प्रसिद्ध है कि नरदेहके निमित्तके बिना जीव मुक्तिको प्राप्त नहीं होता, इसलिये हे उपादान ! तू इस सम्बन्धमें अपने अन्तरंगमें विचार कर देख।

**निमित्त** :—दूसरी सब बातें तो ठीक हैं, किन्तु मुक्तिमें नरदेहका निमित्त है या नहीं? मनुष्य शरीर लगेठा तो है ही, यह लगेठा तो होना ही चाहिये।

**उपादान** :—अकेलेके लिये लगेठा कौन? नागा बाबा को लगेठाका क्या काम? नंगेको कौन लूटनेवाला है? नागा बाबाको लगेठा नहीं होता। इसीप्रकार आत्मा समस्त पर द्रव्यके परिग्रहसे रहित अकेला स्वाधीन है। मोक्षमार्गमें उसे कोई लूटनेवाला नहीं है। आत्मा अपनी शक्तिसे परिपूर्ण है, उसे किसी अन्य लगेठाकी आवश्यकता नहीं है। मनुष्य शरीर जड़ है, वह मुक्तिका लगेठा नहीं हो सकता।

मनुष्यभवसे ही मुक्ति होती है, अन्य तीन गतियों (देव, तिर्यंच, नरक) से मुक्ति नहीं होती, इसलिये निमित्त ऐसा तर्क करता है जैसे मानों मनुष्य-देह आत्माको मुक्त करा देता है। वह कहता है कि—सारी दुनियाँका अभिप्राय लो तो इस पक्षमें अधिक मत मिलेंगे कि मनुष्य-देहके बिना मुक्ति नहीं होती, इसलिये मनुष्य देहसे ही मुक्ति होती है और यह बात तो जग प्रसिद्ध है, इसलिये हे

उपादान इसे तू अपने अन्तरंगमें विचार देख। क्या कहीं देव अथवा नरकादि भवसे मुक्ति होती है? कदापि नहीं। इसलिये मनुष्य शरीर ही मुक्तिमें कुछ सहायक है। भाई! आत्माको मुक्त होनेमें किसी न किसी वस्तुकी सहायताकी आवश्यकता पड़ती ही है। सो हलवालेको भी एक हलवालेकी किसी समय आवश्यकता हो जाती है, इसलिये आत्माकी मुक्तिके लिये निश्चयतः इस मानवदेहकी सहायता आवश्यक है।

इस प्रकार बेचारा निमित्त अपना सारा बल एकत्रित करके तर्क करता है, किन्तु उपादानका एक जवाब उसे खंडित कर देता है, उपादान कहता है कि—

देह पींजरा जीवको रोकै शिवपुर जात।

उपादानकी शक्ति सों मुक्ति होत रे भ्रात॥१७॥

अर्थ :—उपादान-निमित्तसे कहता है, हे भाई! देहरूपी पिंजरा तो जीवको शिवपुर (मोक्ष) जानेसे रोकता है, किन्तु उपादानकी शक्तिसे मोक्ष होता है।

नोट :—यहाँ पर जो यह कहा है कि देहरूपी पिंजरा जीवको मोक्ष जानेसे रोकता है सो यह व्यवहार-कथन है। जीव शरीर पर लक्ष्य करके अपनेपनकी ममत्वकी पकड़से स्वयं विकारमें रुक जाता है तब शरीरका पिंजरा जीवको रोकता है, यह उपचारसे कथन है।

हे निमित्त! तू कहता है कि मनुष्य-देह जीवको मोक्षके लिये सहायक है किन्तु भाई, देहका लक्ष्य तो जीवको मोक्ष जानेसे रोकता है, क्योंकि शरीरके लक्ष्यसे तो राग ही होता है और राग जीवकी मुक्तिको रोकता है; इसलिये देहरूपी पिंजरा जीवको तो शिवपुर जानेसे रोकनेमें निमित्त है।

ज्ञानी मुनि (साधु) पुरुष सातवें-छठवें गुणस्थानमें आत्मानुभवमें झूलता हो तब वहाँ छठवें गुणस्थान पर संयमके हेतुसे शरीर निर्वाहके लिये आहारकी शुभ इच्छा होती है सो वह भी मुनिके केवलज्ञान और मोक्षको रोकती है, इसलिये हे निमित्त ! शरीर आत्माकी मुक्तिमें सहायक होता है, तेरी यह बात बिल्कुल गलत है।

और फिर यह मनुष्य शरीर कहीं पहली बार नहीं मिला है। ऐसे शरीर तो अनन्तवार प्राप्त हो चुके हैं तथापि जीव मुक्त क्यों नहीं हुआ ? स्वयं अपने स्वाधीन आनन्दस्वरूपको नहीं जाना तथा जैसा सर्वज्ञ भगवानने कहा है उसे नहीं समझा और पराश्रयमें ही अटका रहा, इसीलिये मुक्ति नहीं हुई। केवलज्ञान और मुक्ति आत्माके स्वाश्रयभाव से उत्पन्न हुई अवस्था है, वे शरीरकी हड्डियोंमेंसे अथवा इन्द्रियोंमेंसे उत्पन्न नहीं होते।

ज्ञानी और अज्ञानीकी मूल दृष्टिमें ही अन्तर है। अज्ञानीकी दृष्टि आत्मस्वभाव पर नहीं है अर्थात् वह स्वाधीन शक्तिको (उपादानको) नहीं जानता, इसलिये वह पराश्रित दृष्टिके कारण संयोगमें सर्वत्र निमित्तको ही देखता है और इसीकी शक्तिको मानता है। ज्ञानीकी दृष्टि अपने आत्मस्वभाव पर है उसे उपादानकी स्वाधीन शक्तिकी खबर है, इसलिये वह जानता है कि जहाँ अपना स्वभाव साधन होता है वहाँ निमित्त अवश्य अनुकूल होता है, किन्तु निमित्त पर ज्ञानीकी दृष्टि नहीं है, जोर नहीं है। यदि मानव देह धर्मका कारण होता तो मनुष्य देह अनन्तबार मिल चुका है तब जीव कभीका धर्मको पा गया होता, किन्तु यह जीव इससे पहले धर्मको कभी नहीं प्राप्त हुआ क्योंकि यदि उसने पहले धर्मको पाया होता तो अभी इसप्रकार



संसारमें न होता, इसलिये मनुष्य-शरीर जीवको धर्म प्राप्त करनेमें किंचित् मात्र भी सहायक नहीं है। स्वयं अपनेको सहायक हो सकता है।

प्रश्न :—हमें तो धर्म करना है उसमें इतना अधिक समझनेका क्या काम है, और फिर इतना सब समझकर हमें क्या करना है ?

उत्तर :—हे भाई ! स्व कौन और पर कौन है इसका निर्णय किये बिना धर्म कहाँ करेगा ? उपादान और निमित्त दोनों स्वतंत्र भिन्न-भिन्न वस्तुयें हैं यह समझकर पर वस्तु आत्माके लिये हानि-लाभका कारण है, यह मिथ्या मान्यता दूर कर देनी चाहिये। आत्मा ही स्वयं अपना हानि-लाभ करता है ऐसी स्वाधीन दृष्टि होने पर असंयोगी आत्मस्वभावकी सच्ची पहिचान होती है, वही धर्म है और वही आत्मकल्याण है। इस बातको समझे बिना जीव चाहे जो करे, किन्तु उसका कल्याण नहीं होता। १७।

अब निमित्त यह तर्क उपस्थित करता है कि निमित्तके बिना जीवका मोक्ष रुका हुआ है :—

उपादान सब जीव पै रोकनहारौ कौन।

जाते क्यों नहिं मुक्तिमें विन निमित्तके हौन ॥१८॥

अर्थ :—निमित्त कहता है कि उपादान तो सब जीवोंके है तब फिर उन्हें रोकनेवाला कौन है ? वे मोक्षमें क्यों नहीं चले जाते ? स्पष्ट है निमित्तके न होनेसे ऐसा नहीं होता।

“निमित्त कहता है कि हे उपादान ! यदि उपादानकी शक्तिसे ही सब काम होते हों तो उपादान तो सभी जीवोंमें विद्यमान है।

सभी जीवोंमें सिद्ध होनेकी शक्ति मौजूद है तब फिर सभी जीव मुक्त क्यों नहीं हो जाते उन्हें मोक्षमें जानेसे कौन रोकता है ? सच तो यह है कि जीवोंको अच्छा निमित्त नहीं मिलता, इसलिये वे मोक्ष नहीं जा पाते। मनुष्यभव, आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल, पंचेन्द्रियोंकी पूर्णता, निरोग शरीर, साक्षात् भगवानकी उपस्थिति यह सब सानुकूल निमित्त मिल जाय तो जीवको धर्म प्राप्त हो। आँखोंसे भगवानके दर्शन और शास्त्रोंका पठन होता है, इसलिये आँख धर्ममें सहायक हुई न ? और कान हैं तो उपदेश सुना जाता है। यदि कान न हो तो क्या उपदेश सुन सकेंगे ? तात्पर्य यह है कि कान भी धर्ममें सहायक हैं। इस प्रकार यदि इन्द्रियादिककी सामग्री ठीक हो तो जीवकी मुक्ति हो। एकेन्द्रिय जीवके भी उपादान तो है तब फिर वह मोक्षमें क्यों नहीं जाता ? उसके इन्द्रियादिक सामग्री ठीक नहीं है इसलिये मुक्तिको प्राप्त नहीं कर सकता, इससे सिद्ध हुआ कि निमित्त ही बलवान है। १८।

निमित्तका तर्क तो देखो, मात्र संयोगके तरफकी ही बात ली है, कहीं भी आत्माका तो कार्य लिया ही नहीं है। किन्तु अब उपादान उसका उत्तर देता हुआ मात्र आत्माकी तरफसे कहता है कि भले ही सब कुछ हो, किन्तु आत्मा स्वयं जागृति न हो तो उसकी मुक्ति नहीं होती :—

उपादान सु अनादिको उलट रह्यौ जगमाहिं।

सुलटत ही सूधे चले सिद्धलोकको जांहि ॥१९॥

अर्थ :—उपादान कहता है कि जगत्में अनादिकालसे उपादान उलटा हो रहा है, उसके सुलटे होते सच्चा ज्ञान और सच्चा

चारित्र प्रगट होता है और उससे वह सिद्धलोक को जाता है—मोक्ष पाता है।

अरे निमित्त ! यह सच है कि उपादान तो सभी आत्माओंमें अनादिकालसे है, परन्तु वह उपादान अपने विपरीत भावसे संसारमें अटक रहा है, किसी निमित्तने उसे नहीं रोका। निगोददशामें जीव धर्मको नहीं पा सकता, वहाँ भी वह अपने ही विपरीत भावके कारण ज्ञानशक्तिको हार बैठा है। यह बात नहीं है कि 'इन्द्रियां नहीं हैं इसलिये ज्ञान नहीं है', किन्तु 'अपनेमें ही ज्ञानशक्तिका हनन कर चुका है इसलिये निमित्त भी नहीं है'—इसप्रकार उपादानकी ओरसे कहा गया है। अच्छे कान और अच्छी आँखें मिलनेसे क्या होता है ? कानोंमें उपदेशके शब्द आने पर भी यदि उपादान जागृत नहीं है तो धर्म नहीं समझा जा सकता। इसीप्रकार अच्छी आँखें हों और शास्त्रोंके शब्द भलीभाँति पढ़े जाय, किन्तु यदि उपादान अपनी ज्ञानशक्तिसे न समझे तो उसके धर्म नहीं होता। आँखोंसे और शास्त्रसे यदि ज्ञान होता हो तो बड़ी-बड़ी आँखोंवाले भैसेके सामने पोथा रखकर तो देखिये इतना अच्छा निमित्त मिलने पर भी वह समझता क्यों नहीं ? सच तो यह कि उपादानमें ही शक्ति नहीं है, इसलिये नहीं समझता ! कर्म इत्यादिका किसीका जोर आत्मा पर नहीं है। अनादिकालसे उपादानके होने पर भी आत्मा स्वयं अभान दशामें अपने विपरीत पुरुषार्थसे अटक रहा है। जब वह आत्मप्रतीति करके सीधा होता है तब वह मुक्ति प्राप्त करता है। निमित्तके अभावसे मुक्तिका अभाव नहीं है, किन्तु उपादानकी जागृतिके अभावसे मुक्तिका अभाव है।

निमित्त कहता है कि एक काममें बहुतोंकी आवश्यकता होती

है। उपादान कहता है कि भले ही यह सब कुछ हो, किन्तु एक उपादान न हो तो कोई भी कार्य नहीं हो सकता।

**निमित्त** :—मात्र आटेसे रोटी बन सकती है? चकला, बेलन, तबा, अग्नि और बनानेवाला यह सब हो तो रोटी बनती है; किन्तु यदि इनकी सहाय न हो तो अकेला आटा पड़ा-पड़ा क्या करेगा? क्या मात्र आटासे रोटी बन जायेगी? कदापि नहीं। तात्पर्य यह है कि निमित्त बलवान है, उसकी सहायता अनिवार्य है।

**उपादान** :—चकला, बेलन, तवा, अग्नि और बनानेवाला इत्यादि सब मौजूद हों किन्तु यदि आटेकी जगह रेत हो तो क्या रोटी बन जायेगी? कदापि नहीं। क्योंकि उस उपादानमें उस प्रकारकी शक्ति नहीं है। एकमात्र आटा न होनेसे रोटी नहीं बनती और आटेमें रोटीके रूपमें परिणत होनेकी जिस समय योग्यतारूप उपादान शक्ति है उस समय वहाँ अनुकूल निमित्त उपस्थित होते ही हैं, किन्तु रोटी स्वयं आटेमेंसे ही होती है, कार्य तो मात्र उपादानसे ही होता है। आत्मामें मात्र पुरुषार्थसे ही कार्य होता है। मनुष्य भव, आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल, पंचेन्द्रियोंकी पूर्णता, निरोग शरीर और साक्षात् भगवानकी उपस्थिति इत्यादि किसीसे भी जीवको लाभ नहीं होता, यह सब निमित्त तो जीवको अनन्तबार मिल चुके तथापि उपादान स्वयं सुलटा नहीं हुआ, इसलिये किंचित् मात्र भी लाभ नहीं हुआ। यदि स्वयं सुलटा पुरुषार्थ करे तो आत्माकी परमात्मदशा स्वयं अपने में से प्रगट करता है; उसमें उसके लिये कोई निमित्त सहायक नहीं हो सकते। इसमें कितना पुरुषार्थ आया! उपादानने एक आत्मस्वभावको छोड़कर जगत्की समस्त पर वस्तुओंकी दृष्टिको अपंग बना दिया है। मुझे अपने आत्माके अतिरिक्त विश्वकी किसी भी वस्तुसे हानि

या लाभ नहीं है, कोई भी वस्तु मुझे राग नहीं कराती, मेरे स्वभावमें राग है ही नहीं ऐसी श्रद्धा होते ही दृष्टिमें न तो राग रहता है और न परका अथवा रागका आधार ही रहता है। हाँ, आधार स्वभावका रह गया इसलिये राग निराधार-अपंग हो गया। अल्पकालमें ही वह नष्ट हो जायेगा और वीतरागता प्रगट हो जायेगी। ऐसा अपूर्व पुरुषार्थ इस सच्ची समझमें आता है।

आँख, कान इत्यादि किसी जीवके अच्छे होने पर भी अज्ञानसे तीव्र राग करके कोई जीव सातवें नरकमें जाता है तब वहाँ आँख, कान क्या कर सकते हैं? श्री गजकुमार मुनिके आँख, कान जल गये थे तथापि भीतर उपादानके जागृत हो उठनेसे उन्होंने अपनी पर्यायमें विशेष शुद्धिकी प्राप्ति कर ली। इसमें निमित्तने क्या किया? एक द्रव्य दूसरे द्रव्यकी अवस्थाको रोके या मदद करे यह बात सत्यके जगत्में (अनन्त ज्ञानियोंके ज्ञानमें और वस्तुके स्वभावमें) नहीं है। असत्य जगत् (अनन्त अज्ञानी) वैसा मानता है, इसलिये वह संसारमें दुःखी होकर परिभ्रमण करता है।

जीव एकेन्द्रियसे सीधा मनुष्य हो सकता है सो कैसे? एकेन्द्रिय दशामें तो स्पर्शेन्द्रियके सिवाय कोई इन्द्रिय अथवा मनकी सामग्री नहीं है तथापि आत्मामें वीर्यगुण है, उस वीर्यगुणके बल पर भीतर शुभभाव करता है जिससे वह मनुष्य होता है; कर्मका बल कम होनेसे शुभभाव हुआ यह बात गलत है। पर वस्तु से कोई पुण्य-पाप होता ही नहीं है। जीव स्वयं ही मन्द विपरीत वीर्यसे शुभाशुभभाव करता है, यदि उपादान स्वयं सुलटा होकर समझे तो स्वयं मुक्तिको प्राप्त होता है, विपरीत होने पर स्वयं ही रुका रहता है, कोई दूसरा उसे नहीं रोकता।

जब स्वतंत्र उपादान जागृत होता है तब निमित्त अनुकूल ही होता है। स्वभावकी प्रतीतिपूर्वक पूर्णताका पुरुषार्थ करते हुए साधक दशामें रागके कारण उच्च पुण्यका बंध हो जाय और उस पुण्यके फलमें बाहर धर्मकी पूर्णताके निमित्त मिलें, परन्तु जागृत हुआ साधक जीव उस पुण्यके आश्रयमें न रुक कर स्वभावमें आगे बढ़ता पुरुषार्थकी पूर्णता करके मोक्षको प्राप्त करता है। उपादान मोक्ष प्राप्त करता है तब बाह्य निमित्त ज्योंके त्यों पड़े रह जाते हैं, वे कहीं उपादानके साथ नहीं जाते। इस प्रकार पुरुषार्थकी पूर्णता करके मोक्ष होता है।

जीव अनादिकालसे विपरीत समझा है वह खोटे देव, शास्त्र, गुरुके कारण नहीं किन्तु अपने असमझरूप भावके कारण ही उलटा समझकर परिभ्रमण कर रहा है। इसी प्रकार जीव यथार्थ समझ स्वयं ही करता है। कानसे, आँखसे अथवा देव-गुरु-शास्त्रसे जीवके सच्ची समझ नहीं होती। यदि कान इत्यादिसे ज्ञान होता हो तो जिसे वे निमित्त मिलते हैं उन सबको एक साथ ज्ञान हो जाना चाहिये किन्तु ऐसा नहीं होता है, इसलिये मोक्ष और संसार, ज्ञान और अज्ञान अथवा सुख और दुःख यह सब उपादानसे ही होता है। इस प्रकार जीवको लाभ-हानिमें किसी भी परका किंचित् मात्र कारण नहीं है। यों दृढ़तापूर्वक सिद्ध करके निमित्तका “कुछ प्रभाव पड़ता है” इस मिथ्या मान्यतारूप अज्ञानको संपूर्ण रीतसे समाप्त कर दिया है। १९।

अब निमित्त नया तर्क उपस्थित करता है :—

कहुं अनादि विन निमित्त ही उलट रह्यौ उपयोग;

ऐसी बात न संभवै उपादान तुम जोग ॥२०॥

अर्थ :—निमित्त कहता है कि क्या अनादिसे बिना निमित्तके

ही उपयोग (ज्ञानका व्यापार) उलटा हो रहा है। हे उपादान ! तुम्हारे लिये ऐसी बात तो सम्भव नहीं है।

उपादानने १९ वें दोहेमें कहा था कि उपादान अनादिसे उलटा हो रहा है उसे लक्ष्यमें लेकर निमित्त यह तर्क करता है कि हे उपादान ! तुझमें अनादिसे जो विकार भाव हो रहा है क्या वह बिना निमित्त ही होता है। यदि पर निमित्तके बिना मात्र आत्मासे ही विकार होता हो तो वह आत्माका स्वभाव ही हो जायेगा और तब सिद्ध भगवानके भी विकार होना चाहिये, परन्तु विकारी भाव अन्य निमित्तके बिना नहीं होता क्योंकि वह आत्माका स्वभाव नहीं है। यदि बिना निमित्तके होने लगे तो विकारी स्वभाव हो जाय, किन्तु विकारमें निमित्त तो होता ही है, इसलिये निमित्तका जोर हुआ या नहीं।

विपरीतभाव अकेले स्वभावमेंसे आया या उसमें कोई निमित्त था ? क्या अकेली चूड़ी बज सकती है ? अकेली चूड़ी नहीं बज सकती; किन्तु साथमें दूसरी चूड़ीके होने पर ही बज सकती है। यदि सामने चन्द्रमा न हो तो आँखमें उँगली लगानेसे दो चन्द्रमा न दिखाई दें, क्योंकि सामने दूसरी चीज है इसीलिये विकार होता है। इसीप्रकार आत्माके विकारमें दूसरी वस्तुकी आवश्यकता होती है। उपादान और निमित्त दोनोंके एकत्रित होने पर विकार होता है। आत्मा जब विकार करता है तब वह परके लक्ष्यसे करता है या आत्माके लक्ष्यसे ! मात्र आत्माके लक्ष्यसे विकार होनेकी योग्यता ही नहीं है, इसलिये विकार होनेमें मैं (निमित्त) भी कुछ करता हूँ।

ध्यान रखिये यह तो सब निमित्तके तर्क हैं। ऊपरसे बलवान लगता तर्क भीतरसे बिल्कुल ढीला है, उसकी तो नींव कमजोर है।

उपादानके सामने यह एक भी तर्क नहीं टिक सकता।२०।

उपादानका उत्तर

उपादान कहे रे निमित्त हम पै कही न जाय।

ऐसे ही जिन केवली देखे त्रिभुवन राय॥२१॥

अर्थ :—उपादान कहता है कि हे निमित्त ! मुझसे नहीं कहा जा सकता। जिनेन्द्र केवली भगवान त्रिभुवनरायने ऐसा ही देखा है।

नोट :—यहाँ पर उपादानके कहनेका आशय यह है कि जब जीव विकार करता है तब उसका लक्ष्य दूसरी वस्तु पर होता है उस दूसरी वस्तुको निमित्त कहा जाता है, किन्तु जिनेन्द्रभगवान देखते हैं कि निमित्तकी असरके बिना ही उपादानका उपयोग अपने ही कारणसे विपरीत हुआ है, इसलिये तू जैसा कहता है वैसा मुझसे नहीं कहा जा सकता।

अरे निमित्त ! आत्मा अपने विपरीत भावसे जब राग-द्वेष करता है तब दूसरी वस्तु जो उपस्थित है इसका इनकार कैसे किया जा सकता है। जीव विकार करता है, तब दूसरी वस्तु निमित्तरूपमें उपस्थित होती है यह ठीक है, किन्तु उस निमित्तको लेकर आत्मा विकार करता है यह बात ठीक नहीं है। भले ही विकार आत्माके स्वभावमेंसे नहीं आता, किन्तु विकारकी उत्पत्ति तो आत्माकी ही अवस्थामेंसे होती है कहीं निमित्तकी अवस्थामेंसे नहीं होती। दो चूड़ियाँ एकत्रित होकर बजती हैं, किन्तु वे एक दूसरेके कारण नहीं बजती लेकिन प्रत्येक चूड़ी अपनी ही शक्तिसे बजती है। दो लकड़ियाँ एकत्रित होती हैं तो वे चूड़ियोंकी तरह नहीं बजती, क्योंकि उनमें उस तरहकी उपादान शक्ति नहीं है। कभी दो चूड़ियाँ टकर लगनेसे टूट भी जाती हैं तब वे वैसी क्यों नहीं बजती ? उनमें वैसी



आवाज होनेकी उपादान शक्ति नहीं है, किन्तु टूटनेरूप योग्यता है इसलिये वैसा होता है। दूसरे चन्द्रमा है इसलिये आँखको उंगलीसे दबाने पर दो चन्द्रमा दिखाई देते हों यह बात भी ठीक नहीं है। यदि चन्द्रमाके कारण ऐसा हो तो जो चन्द्रमाको देखते हैं उन सबको दो चन्द्रमा दिखाई देने चाहिये किन्तु ऐसा नहीं होता, क्योंकि इसमें चन्द्रमाका कारण नहीं है। एक देखनेवालेको चन्द्रमा एक ही स्पष्ट दिखाई देता है। और दूसरे देखनेवाले को दो चन्द्रमा दिखाई देते हैं। यहाँ देखनेवालेकी दृष्टिमें कुछ अन्तर है। जो देखनेवाला अपनी आँखमें उंगली गड़ाकर देखता है उसे दो चन्द्रमा दिखाई देते हैं, दूसरेको दिखाई नहीं देते। उससे सिद्ध हुआ कि निमित्तके अनुसार कार्य नहीं होता, किन्तु उपादान कारणकी शक्तिके अनुसार कार्य होता है, इसीप्रकार जब जीव स्वरूपको भूलकर विपरीत दृष्टिसे विकार करता है तब वह उसे स्वयं ही करता है, कोई पर नहीं करता। सामने निमित्त तो एकका एक ही है तथापि उपादानकी योग्यताके कारण परिणाममें अंतर होता है।

इसका दृष्टांत इस प्रकार है—कोई एक सुन्दर मरी हुई वेश्या मार्गमें पड़ी थी, उसे साधु, चोर, विषयासक्त पुरुष और कुत्तेने देखा। उनमेंसे साधुने विचार किया कि अरे ऐसा मनुष्यभव पाकर भी आत्माको पहिचाने बिना यह मर गई। चोरने विचार किया कि यदि कोई यहाँ न हो तो इसके शरीर परसे गहने उतार लूँ, विषयासक्त पुरुषने यह सोचा कि यदि यह जीवित होती तो उसके साथ भोग-भोगता, और कुत्तेने ऐसा विचार किया कि यदि यहाँसे सब लोग चले जाय तो मैं इसके शरीरके मांसको खाऊँ।

अब देखिये, यहाँ पर सबके एकसा ही निमित्त है तथापि

प्रत्येककी उपादानकी स्वतंत्रताके कारण विचारमें कितना अन्त हो गया। यदि निमित्तका असर होता हो तो सबके विचार एक समान होना चाहिये, किन्तु ऐसा नहीं हुआ, इससे सिद्ध है कि उपादानकी स्वाधीनतासे ही कार्य होता है। जीव स्वयं ही पापराग-पुण्यराग या पुण्य-पाप रहित शुद्ध वीतराग भावमेंसे जैसा भाव करना चाहे वैसा भाव कर सकता है।

यह तो समझी जा सकने योग्य धर्म की बात है, प्रथम दशा में समझनेके लिये साधारण बात है। सम्यग्दर्शन अर्थात् स्वतंत्र परिपूर्ण आत्मस्वभावभावकी पहिचानको प्रगट करनेके पूर्व वस्तुका यथार्थ करनेके लिये यह प्रथम भूमिका है। कल्याणके लिये यह अपूर्व समझ है। यह मात्र शब्दोंकी बातें नहीं हैं, किन्तु यह तो केवलज्ञानकी प्राप्तिकी बारहखड़ीकी प्रथम भूमि मात्र है। इसलिये इसे रुचिपूर्वक ठीक समझना चाहिये।

अज्ञानी कहता है—कर्मके निमित्तके बिना आत्माके विकार नहीं होता, इसलिये कर्म ही विकार करता है। ज्ञानी कहता है—आत्मा स्वयं जितना विकार करता है तब उतना अंश कर्मको निमित्त कहा जाता है, लेकिन वह कर्म आत्माको विकार नहीं करता। कोई हजारों गालियाँ दे तो वह क्रोधका कारण नहीं है, किन्तु जीव यदि क्षमाको छोड़कर क्रोध करे तो गालीको क्रोधका निमित्त कहा जाता है। जीव यदि अपने भावमें क्षमाको सुरक्षित रखें तो हजारों या करोड़ों गालियोंके होने पर भी उसे निमित्त नहीं कहा जा सकता। उपादानको भावानुसार सामनेकी वस्तुमें निमित्तपनका आरोप आता है, किन्तु सामनेकी वस्तुके कारण उपादानका भाव हो यह कदापि नहीं होता। उपादान जब स्वाधीनतापूर्वक अपना

कार्य करता है तब दूसरी वस्तु मात्र निमित्तरूप उपस्थित होती है ऐसा सर्वज्ञदेवने देखा है, तब हे निमित ! मैं उससे इनकार कैसे कर सकता हूँ।

यहाँ उपादान यह कहना चाहता है कि जगत्की दूसरी वस्तुएँ उपस्थित हैं, उन्हें अपने ज्ञानमें जानता तो हूँ, दूसरी वस्तुको जाननेमें कोई हर्ज नहीं है, किन्तु दूसरी वस्तु मुझमें कुछ कर सकती है यह बात मुझे मान्य नहीं है। जगतमें अनन्त पर द्रव्य हैं वे सब सदा स्वतंत्र भिन्न भिन्न हैं यदि यों न माने तो ज्ञान असत् है और यदि यह मानें कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कुछ कर सकता है तो भी ज्ञान असत् ही है जीव तीव्र राग-द्वेष करता है और उसके निमित्तसे जो कर्म बँधते हैं। उन कर्मोंका जब उदय आता है तब जीवको तीव्र राग-द्वेष करना ही होता है—यह बात बिल्कुल गलत है और जीवकी स्वाधीनताकी हत्या करनेवाली है। जब जीव राग-द्वेष करता है तब कर्मका निमित्त तो होता है, किन्तु कर्म जीवके राग-द्वेष नहीं कराते। जीव द्रव्य अथवा पुद्गल द्रव्य दोनों अपनी पर्यायमें स्वतंत्र हैं और अपनी-अपनी अविकारी अथवा विकारी अवस्थाको स्वयं ही स्वतंत्रतया करते हैं। कोई एक दूसरेका कर्ता नहीं है, इस प्रकार स्वतंत्र वस्तुस्वभावकी पहचान करना सो यही प्रथम धर्म है।

आत्माके गुणके लिये पर वस्तुकी सहायताकी आवश्यकता है, पर वस्तु आत्माके गुण या दोष उत्पन्न करती है यह मान्यता ठीक नहीं है, यह बात इस संवादमें सिद्ध की गई है। यदि पर वस्तु आत्मामें दोष उत्पन्न करती है तो पर वस्तु तो हमेशा रहती है, इसलिये दोष भी स्थायी हो जायेंगे और वे कभी दूर नहीं हो सकेंगे और यदि

गुणके लिये आत्माको पर वस्तुकी आवश्यकता हो तो गुण पराधीन हो जायेंगे, परन्तु गुण भी स्वाधीन स्वभाव है, इसलिये आत्माके गुण-दोषोंको पर वस्तुएँ उत्पन्न नहीं कर सकती। जब जीव स्वयं अपना कार्य करता है तब वह निश्चय (उपादान) है और अन्य वस्तुकी उपस्थिति व्यवहार (निमित्त) है। यह दोनों हैं अवश्य किन्तु अन्य वस्तु उसमें गुण-दोष उत्पन्न करनेके लिये समर्थ नहीं है।

पैसा हो तो पुण्य उत्पन्न हो और शरीर अच्छा हो तो धर्म हो, यह दोनों मान्यतायें बिल्कुल मिथ्या है। इसीप्रकार देव, गुरु, शास्त्रकी उपस्थिति जीवको धर्म प्राप्त कराती है यह बात भी मिथ्या है। यदि जीव स्वयं समझे तो धर्म प्राप्त करे और जब स्वयं धर्मको प्राप्त करता है तब विनयके लिये यह कहा जाता है कि सद्गुरुने धर्म समझाया, यह व्यवहार है किन्तु वास्तवमें कोई किसीको धर्म समझानेके लिये समर्थ नहीं है। इस प्रकारके निश्चयकी यदि प्रतीति हो तो इस व्यवहारका कथन सच्चा कहा जाता सकता है ऐसा न हो तो व्यवहार असत् है ही।

निमित्तका तर्क था कि हे उपादान तेरी यह सब बात तो ठीक है, किन्तु तेरी आत्मामें जो दोष होता है वह दोष क्या तेरे स्वभावमेंसे आता है? कदापि नहीं। दोषके लिये अन्य वस्तुकी उपस्थिति आवश्यक है, इसलिये मैं कहता हूँ कि निमित्तके बलसे ही दोष होते हैं।

उपादानने इसके उत्तरमें कहा कि हे निमित्त ! जब उपादान अपना कार्य करता है तब निमित्तकी उपस्थिति होती है यों श्री सर्वज्ञ भगवानने देखा है तब मैं उससे इनकार कैसे कर सकता हूँ, परन्तु अन्य उपस्थित वस्तु आत्माको बिल्कुल विकार नहीं कराती।

“यदि मात्र उपादानसे ही कार्य हो सकता हो तो क्या बिना कर्मके ही आत्मामें अवगुण होते हैं ? बिना कर्मके दोष नहीं होते, इसलिये कर्मका बल ही आत्मामें रागादि उत्पन्न कराते हैं।” इसप्रकार अज्ञानी जन उपादानको पराधीन मानते हैं। उपादानकी स्वाधीनताको प्रगट करते हुये ज्ञानी कहते हैं कि जीव स्वयं समझे तो वह मुक्तिको प्राप्त करता है, उसे कर्म नहीं रोक सकते और जीव स्वयं दोष करता है तो कर्म इत्यादि अन्य वस्तुको निमित्त कहा जाता है, परन्तु कर्म जबर्दस्तीसे आत्माको विकार नहीं कराते इसप्रकार पर वस्तुकी निमित्तरूप उपस्थिति है, इतना ज्ञानमें स्वीकार किया किन्तु वह उपादानके लिये किंचित् मात्र भी कुछ करता है इस बातको बिलकुल जड़से ही समाप्त कर दिया है।२१।

अब निमित्त कुछ ढीला होकर उपादान और निमित्त दोनोंको एक समान [५० प्रतिशत] कहनेके लिये उपादानको समझाता है—

जो देख्यो भगवानने सो ही सांचो आहिं।

हम तुम संग अनादिके बली कहोगे कांहि॥२२॥

अर्थ :—निमित्त कहता है कि भगवानने जो देखा है वही सच है मेरा और तेरा अनादिकालीन सम्बन्ध है, इसलिये हम दोनोंमेंसे बलवान् किसे कहा जाय ? अर्थात् कमसे कम यह तो कहो हम दोनों समान हैं। समकक्ष हैं।

**निमित्त** :—हे उपादान ! भगवान श्री जिनेन्द्रदेवने हम दोनोंको (उपादान-निमित्त तथा निश्चय-व्यवहारको) देखा है तब भगवानने जो देखा है वह सत्य है। हम दोनों अनादिकालसे एक साथ रह रहे हैं, इसलिये कोई बलवान नहीं है—दोनों समान हैं, कमसे कम इतना तो कहो।

**उपादान** :—नहीं, नहीं। निमित्ताधीन परावलम्बी दृष्टि से (व्यवहारनयका आश्रयसे) तो जीव अनादिकालसे परिभ्रमण कर रहा है। संसारके अधर्म-स्त्री, धन इत्यादिके निमित्तसे होते हैं और धर्म देव, गुरु, शास्त्रके निमित्तसे होते हैं इसप्रकार पराधीन माननेवाला निमित्तदृष्टिसे ही मिथ्यात्व है और उसीका फल संसार है।

**निमित्त** :—भगवानने एक कार्यमें दो कारण देखे हैं, उपादान कारण और निमित्त कारण। इसलिये कर्ममें उपादान और निमित्त दोनोंके ५०—५० प्रतिशत रखिये। स्त्रीका निमित्त तो विकार है और गाली देनेवाला हो तो क्रोध होता है, इसलिये ५० प्रतिशत निमित्त कराता है और ५० प्रतिशत उपादान करता है, इस प्रकार दोनोंके एकत्रित होनेसे कार्य होता है, यह सीधा हिसाब है।

**उपादान** :—गलत, बिल्कुल गलत। यह ५०—५० प्रतिशतका सीधा हिसाब नहीं, किन्तु दो और दो = तीन (२ + २ = ३) जैसी स्पष्ट भूल है। यदि स्त्री अथवा गाली ५० प्रतिशत विकार उत्पन्न करती हो तो केवली सर्वज्ञके भी विकार होना चाहिये, किन्तु कोई भी निमित्त एक प्रतिशत भी किसीको भी विकार करानेमें समर्थ नहीं है। जब जीव स्वयं शत प्रतिशत स्वतः विकार करता है तब परवस्तुकी उपस्थितिको निमित्त कहा जाता है इस समझमें ही स्पष्ट हिसाब है कि प्रत्येक द्रव्य भिन्न रहें और स्वतंत्रतया अपनी अपनी अवस्थाओंके कर्ता होनेसे कोई द्रव्य किसी दूसरेका कुछ भी नहीं कर सकता।

इस दोहेमें निमित्तकी प्रार्थना है कि, हम दोनों समकक्षी रहें। अनादिकालसे जीवके साथ कर्म चिपके हुये हैं और वे जीवके विकारमें निमित्त हो रहे हैं। निमित्तरूप कर्म अनादिकालसे हैं,

इसलिये उन्हें जीवके साथ समकक्षी तो रखिये।२२।

अब उपादान ऐसा उत्तर देता है कि :—निमित्तरूप जो कर्मके परमाणु हैं वे तो बदलते ही जाते हैं और मैं उपादान स्वरूप आत्मा वैसाका वैसा त्रिकाल रहता हूँ, इसलिये मैं ही बलवान हूँ :—

उपादान कहे वह बली जाको नाश न होय।

जो उपजत विनशत रहे बली कहा ते सोय॥२३॥

अर्थ :—उपादान कहता है—जिसका नाश नहीं होता वह बलवान है, जो उत्पन्न होता है और जिसका विनाश होता है वह बलवान कैसे हो सकता है ?

नोट—उपादान स्वयं सदा कार्यरूप परिणत होनेवाली अखंड एकरूप वस्तु है, इसलिये उसका नाश नहीं होता, निमित्त तो संयोगरूप है, आता और जाता है इसलिये वह नाश रूप है अतः उपादान ही बलवान है।

जीव स्वयं अज्ञान भावसे भले अनादिकालसे नया नया रागद्वेष किया करे तथापि निमित्त कर्म अनादिसे एकसे नहीं रहते वे तो बदलते ही रहते हैं। पुराने निमित्त कर्म खिर जाते हैं और नये बँधते हैं तथा उनका समय पूरा होने पर वे भी खिर जाते हैं। जीव यदि नया राग-द्वेष करता है तो उन कर्मोंको निमित्त कहा जाता है, इस प्रकार उपादान स्वरूप आत्मा तो अनादिकालसे वैसाका वैसा ही रहता है और कर्म बदलते रहते हैं, इसलिये मैं ही (उपादान ही) बलवान हूँ। अपने गुणोंको प्रगट करनेकी शक्ति भी मुझमें ही है। सच्चे देव, गुरु भी पृथक् पृथक् बदलते जाते हैं और उनकी सच्ची वाणी भी बदलती जाती है [भाषाके शब्द सदा एकसे नहीं रहते] परंतु सच्चे देव, शास्त्र, गुरु और

उनकी वाणीका ज्ञान करते समय मेरा अपना ही ज्ञान ज्ञानसे काम करते हैं। मैं आत्मा त्रिकाल हूँ और गुण अथवा दोषके निमित्त सब बदलते ही जाते हैं। कर्मोंके परमाणु भी बदलते जाते हैं तब फिर कर्म बड़े हैं या मैं? अज्ञानियोंकी यह महा मिथ्यात्वरूप भयङ्कर भूल है कि वे ऐसा मानते हैं कि कर्म आत्माके पुरुषार्थको रोकते हैं आत्माके पुरुषार्थको पराधीन माननेवाले महामिथ्यात्वरूप सबसे बड़े दोषको अपने ऊपर ले लेते हैं। वीतराग शासनमें परम सत्य वस्तु, स्वरूपसे प्रगट है कि, आत्माके भावमें कर्मकी शक्ति बिलकुल नहीं है मात्र आत्माका ही बल है। आत्मा सम्पूर्ण स्वाधीन है। अपनी स्वाधीनतासे अपने चाहे जैसे भाव कर सकता है, आत्मा स्वयं जिस समय जैसा पुरुषार्थ करता है, तब वैसा ही पुरुषार्थ हो सकता है, इस प्रकारकी आत्मस्वाधीनताकी समझ ही मिथ्यात्वके सबसे बड़े दोषको नाश करनेका एक मात्र उपाय है।

अरे भाई ! तू आत्मा स्वतंत्र वस्तु है, तेरे भावसे तुझे हानि-लाभ है, कोई पर वस्तु तुझे हानि-लाभ नहीं करती। जीव यदि इसप्रकारकी यथार्थ प्रतीति करे तो वह स्वलक्ष्यसे मुक्तिको प्राप्त करे, परन्तु यदि जीव अपने भावको न पहचाने और यही मानता रहे कि पर निमित्तसे निजको हानि-लाभ होता है तो उसका पर लक्ष्य कदापि नहीं छूट सकता और स्वकी पहिचान भी कभी नहीं हो सकती, इसलिये वह संसारमें चक्कर लगाया करता है। अतः उपादान और निमित्त इन दोनोंके स्वरूपको पहचानकर यह निश्चय करना चाहिये कि उपादान और निमित्त दोनों पृथक् पृथक् पदार्थ हैं, कभी कोई एक दूसरेका कार्य नहीं करते। इसप्रकार निश्चय करके निमित्तके लक्ष्यको छोड़कर अपने उपादान स्वरूपको



लक्ष्यमें लेकर स्थिर होना ही सुखी होनेका—मोक्षका उपाय है ॥२३॥

निमित्तका तर्क—

उपादान तुम जोर हो तो क्यों लेत अहार।

पर निमित्तके योग सों जीवत जब संसार ॥२४॥

अर्थ :—निमित्त कहता है—हे उपादान ! यदि तेरा बल हो तो तू आहार क्यों लेता है ? संसारके सभी जीव पर निमित्तके योगसे जीते हैं।

हे उपादान ! इन कर्म इत्यादिको जाने दीजिये। यह तो दृष्टिसे दिखाई देते नहीं, किन्तु यह तो स्पष्ट दिखाई देता है कि आहारके निमित्तसे तू जी रहा है यदि तेरी शक्ति हो तो तू आहार क्यों लेता है ? बिना आहारके अकेला क्यों नहीं जीता ? अरे ! छठे गुणस्थान तक मुनिराज भी आहार लेते हैं तब आहारके निमित्तकी तुझे आवश्यकता हुई या नहीं ? सारा संसार आहारके ही निमित्तसे जी रहा है। क्या आहारके बिना मात्र उपादान पर जिया जा सकता है ? सच तो यह है कि निमित्त ही बलवान है।

इसप्रकार निमित्त पक्षका वकील तर्क करता है, जो वकील होता है वह अपने ही मुवक्किलकी ओरसे तर्क उपस्थित करता है, वह अपने विरोधी पक्षके सच्चे तर्कको जानता हुआ भी कभी उस तर्कको पेश नहीं करता। यदि वह विरोधी पक्षके ओरके तर्कको उपस्थित करे तो वह वकील कैसे कहलायेगा। यहाँ निमित्तका वकील कहता है कि निमित्तकी भी कुछ दहाईयाँ हैं, मात्र उपादान ही काम नहीं करता, इसलिये निमित्तकी शक्तिका आधार भी स्वीकार करो ॥२४॥

उपादानका उत्तर—

जो आहारके जोग सों जीवत हैं जगमांहि।

तो वासी संसारके मरते कोऊ नांहि ॥२५॥

अर्थ :—उपादान कहता है कि यदि आहारके योगसे जगतके जीव जीते हों तो संसारवासी कोई भी जीव नहीं मरता।

हे निमित्त ! आहारके कारण जीवन नहीं टिकता। यदि जगतके जीवोंका जीवन आहारसे टिकता हो तो इस जगतमें किसी जीवको मरना ही नहीं चाहिये, किन्तु खाते-खाते भी जगतके अनेक जीव मरते देखे गये हैं, इससे सिद्ध है कि आहार जीवनका कारण नहीं है सब अपनी अपनी आयुसे जीते हैं, जब तक आयु होती है तब तक जीता है और आयुके न होने पर चक्रवर्ती वासुदेवके लिये बनाये गये 'सिंह केशरिया लड्डु' खाने पर भी मर जाता है। जहाँ आयु समाप्त हुई वहाँ आहार क्या करेगा ? आठों पहर खान-पान और आरामसे शरीरकी चाकरी करने पर भी जीव क्यों मर जाते हैं ? आहारके निमित्तको लेकर उपादान नहीं टिकता। एक वस्तुमें दूसरी वस्तुके कारण कुछ भी नहीं होता, इसलिये हे निमित्त ! तेरी बात गलत है। भोजन करनेके लिये बैठा हो, भोजन करके पेट भर लिया हो, हाथमें ग्रास मौजूद हो फिर भी शरीर छूट जाता है। यदि आहारसे शरीर टिकता हो तो खानेवाला कोई नहीं मरना चाहिये और सभी उपवासी मर जाने चाहिये, परन्तु आहार करनेवाले भी मरते हैं और बिना आहारके भी पवनभक्षी वर्षों तक जीते रहते हैं, इसलिये आहारके साथ जीवन-मरणका कोई सम्बन्ध नहीं है। आहारका संयोग उन परमाणुके कारणसे आते हैं और शरीरके परमाणु शरीरके कारण टिकते हैं। आहार और शरीर दोनोंके परमाणु भिन्न हैं।

आहारकी तरह दवाके कारण भी शरीर नहीं टिकता और न दवाके कारण रोग ही दूर होता है। हजारों आदमी औषधियाँ लाते हैं खाते हैं, किन्तु रोग नहीं मिटता और दवाके बिना भी रोग मिट जाता है, यह तो स्वतंत्र द्रव्यकी स्वतंत्र अवस्थायें हैं एक वस्तुके कारण दूसरी वस्तुमें कार्य हो, यह बात पवित्र जैनदर्शनको मान्य नहीं है क्योंकि, वस्तुस्थिति ही वैसी नहीं है। जिसे ऐसा विपरीत विश्वास है कि एक द्रव्यके कारण दूसरे द्रव्यका कार्य होता है वे महा अज्ञानी हैं उसे वस्तुस्थितिकी खबर नहीं है, जैनधर्मको नहीं जानता।२५।

अब निमित्त तर्क उपस्थित करता है :—

सूर सोम मणि अग्निके निमित्त लखें ये नैन।

अंधकारमें कित गयो उपादान दृग दैन॥२६॥

अर्थ :—निमित्त कहता है—सूर्य, चन्द्रमा, मणि अथवा अग्निका निमित्त हो तो आँख देख सकती है, यदि उपादान देखनेका काम कर सकता है तो अन्धकारमें उसकी देखनेकी शक्ति कहाँ चली जाती है (अन्धकारमें आँखसे क्यों दिखाई नहीं देता)।

तू सर्वत्र 'मैं-मैं' करता है और यह कहता है कि सब कुछ मेरी (उपादानकी) शक्तिसे ही होता है, परन्तु हे उपादान ! तू देखनेका काम तो सूर्य, चन्द्र, मणि अथवा दीपकके निमित्तसे ही कर सकता है। यदि तेरे ज्ञानसे ही जानना होता हो तो अन्धेरेमें तेरा ज्ञान कहाँ चला जाता है ? दीपक इत्यादिके बिना तू अंधेरेमें क्यों नहीं देख सकता ? और फिर बिना पुस्तकके तुझे ज्ञान क्यों नहीं होता ? क्या बिना शास्त्रके मात्र ज्ञानमेंसे ज्ञान होता है ? देखो यदि सामने समयसार शास्त्र न रख दिया जाय तो क्या इसके बिना ज्ञान होता है ? यदि ज्ञानसे ही ज्ञान होता हो तो सामने शास्त्र क्यों रखते

हो ? तात्पर्य यह है कि सर्वत्र मेरा ही बल है। तू अपने 'अहं'—को छोड़ और यह स्वीकार कर कि मेरी भी शक्ति है। ऐसा निमित्तका तर्क है।२६।

उपादानका उत्तर—

सूर सोम मणि अग्नि जो, करे अनेक प्रकाश।

नैन शक्ति बिन ना लखैं, अंधकार सम भास॥२७॥

अर्थ :—उपादान कहता है कि सूर्य, चन्द्रमा, मणि और दीपक अनेक प्रकारका प्रकाश करते हैं तथापि देखनेकी शक्तिके बिना कुछ भी नहीं दिखाई देता, सब अंधकार सा भाषित होता है।

अरे भाई ! किसी पर वस्तुके द्वारा ज्ञान नहीं हो सकता ज्ञानका प्रकाश करनेवाला तो ज्ञानस्वरूपी आत्मा है और प्रकाश इत्यादिका प्रकाशक भी आत्मा ही है। सूर्य इत्यादिसे ज्ञान प्रकाशित नहीं होता अर्थात् पर निमित्तसे आत्मा ज्ञान नहीं करते। हे निमित्त ! यदि सूर्य, चन्द्रमा या दीपकसे दिखाई देता हो तो अंधके पास उन सबको रखकर उसमें देखनेकी शक्ति आ जानी चाहिये, किन्तु सूर्य इत्यादि सब कुछ होने पर भी अंधको क्यों नहीं दिखाई देता। उपादानमें ही जाननेकी शक्ति नहीं है, इसलिये वह नहीं जान सकता। यदि उपादानमें जाननेकी शक्ति हो तो (बिल्ली इत्यादिक) अंधेरेमें भी देख सकते हैं। जहाँ प्राणीकी आँख ही जाननेकी शक्तिसे युक्त है, वहाँ उसे कोई अंधेरा नहीं रोक सकता। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान इत्यादि आत्माके गुणोंका चैतन्यप्रकाश किसी संयोगसे प्रगट नहीं होता, किन्तु आत्मस्वभावसे ही वह प्रगट होता है। जहाँ आत्मा स्वयं पुरुषार्थके द्वारा सम्यग्दर्शनादि रूप परिणामन करता है वहाँ उसे कोई निमित्त रोकनेवाला अथवा

सहायक नहीं है, तात्पर्य यह है कि निमित्तका दूसरों पर कोई बल नहीं है।

इसी प्रकार शास्त्रकी सहायतासे भी ज्ञान नहीं होता। समयसार शास्त्र हजारों आदमियोंके पास एकसा ही होता है। यदि शास्त्रसे ज्ञान होता हो तो उन सबको एकसा ही ज्ञान होना चाहिये, परन्तु ऐसा नहीं होता। एक ही शास्त्रके होने पर भी कोई सीधा अर्थ समझकर मिथ्यात्वका नाश करता है और कोई विपरीत अर्थ करके उलटा मिथ्यात्वको पुष्ट करता है, ऐसी स्थितिमें शास्त्र क्या करेगा ? समझ तो अपने ज्ञानमेंसे ही निकाली जाती है। किसी शास्त्रमेंसे ज्ञान नहीं हो सकता। मैं अपने ज्ञानके द्वारा अपने स्वतंत्र आत्मस्वभावकी पहिचान करूँ तो मुझे धर्मका लाभ हो सकता है, किसी संयोगसे लाभ मानते हैं वे अज्ञानी हैं।

अहा ! देखो तो उपादान स्वभावकी कितनी शक्ति है। कहीं भी किंचित्मात्र भी पराधीनता नहीं पुषाती। ऐसे उपादान स्वरूपको पहचानकर उसका जो आश्रय करता है वह अल्पकालमें ही मुक्तिको प्राप्त कर लेता है। जीवोंने अनादिकालसे अपनी शक्तिकी पहिचान ही नहीं की, इसलिये परकी आवश्यकताको मान बैठे इसीलिये पराधीन होकर दुःखी हो रहे हैं, यह जिस प्रकार कहा जाता है उसीप्रकार अपनेको स्वाधीनरूपमें सर्वप्रथम पहचानना चाहिये, यही मुक्तिका मार्ग है।२७।

अब निमित्त तर्क उपस्थित करता है :—

कहै निमित्त वे जीव को मो बिना जगके माहिं,  
सवै हमारे वश परे हम बिन मुक्ति न जाहिं॥२८॥

अर्थ :—निमित्त कहता है कि मेरे बिना जगतमें मात्र जीव

क्या कर सकता है ? सभी मेरे वश में है, मेरे बिना जीव मोक्ष भी में नहीं जा सकता ।

बिना निमित्तके जीव मुक्तिको नहीं पाता । पहले मनुष्य शरीरका निमित्त, फिर देव-शास्त्र-गुरुका निमित्त, फिर मुनि दशामें महाव्रतादिका शुभ रागका निमित्त इसप्रकार समस्त निमित्तकी परम्पराके बिना, जीव मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता । क्या बीचमें व्रतादिका पुण्य आये बिना कोई जीव मुक्त हो सकता है ? कदापि नहीं । इससे सिद्ध है कि पुण्य निमित्त है और उसीके बलसे जीव मुक्ति प्राप्त करता है । यह निमित्तका तर्क है । २८।

उपादान का उत्तर—

उपादान कहै रे निमित्त ! ऐसे बोल न बोल,  
ताको तज निज भजत हैं ते ही करें किलोल ॥२९॥

अर्थ :—उपादान कहता है कि हे निमित्त ! ऐसी बात मत कर । तेरे ऊपरकी दृष्टिको छोड़कर जो जीव अपना भजन करता है वही किलोल (आनन्द) करता है ।

हे निमित्त ! तेरे प्रतापसे जीव मुक्तिको पाता है, इस व्यर्थ बातको रहने दे, क्योंकि शरीर, देव-शास्त्र-गुरु अथवा पंचाणुव्रत इन सब निमित्तोंके लक्ष्यसे तो जीवको राग ही होता है और उसे संसारमें परिभ्रमण करना होता है, किन्तु जब इन सब निमित्तोंके लक्ष्यको छोड़कर और पंचमहाव्रतोंके विकल्पको भी छोड़कर, अपने अखंडानन्दी आत्मस्वभावकी भावना करके, सम्यग्दर्शन ज्ञान-पूर्वक जो अन्तरंगमें स्थिरता करता है वही जीव मुक्तिको पाता है और वही परमानन्दको भोगता है । निमित्तके लक्ष्यसे आनन्दानुभव नहीं हो सकता । जो निमित्तकी दृष्टिमें रुक जाते हैं वे

मुक्ति को नहीं पाते। इसप्रकार निमित्तके बलवान होनेका तर्क खंडित हो गया।२९।

निमित्त कहता है—

कहै निमित्त हमको तजें ते कैसे शिव जात,  
पंच महाव्रत प्रगट है और हु क्रिया विख्यात॥३०॥

अर्थ :—निमित्त कहता है कि मुझे छोड़कर कोई मोक्ष कैसे जा सकता है? पंचमहाव्रत तो प्रगट हैं ही और दूसरी क्रियायें भी प्रसिद्ध हैं, जिन्हें लोग मोक्षका कारण मानते हैं।

शास्त्रोंमें तो निमित्तके पक्षमें शास्त्रोंके पृष्ठके पृष्ठ भरे पड़े हैं तब फिर आप निमित्तकी सहायतासे इनकार कैसे करते हैं? पंचमहाव्रत, समिति, गुप्ति इत्यादिका शास्त्रोंमें विशद् वर्णन है। क्या उनको धारण किये बिना जीव मोक्ष को जा सकता है। मुझे छोड़कर जीव मोक्ष जा ही नहीं सकता। अहिंसादि पंचमहाव्रत परका लक्ष्य करना होता है या नहीं?

पंच महाव्रतमें पर लक्ष्यको लेकर जो रागका विकल्प उठता है उसे आगे रखकर निमित्त कहता है कि क्या पंचमहाव्रतके रागके बिना मुक्ति होती है? बात यह है कि पंचमहाव्रतके—शुभरागसे मुक्तिको माननेवाले अज्ञानी बहुत हैं, इसलिये निमित्तने यह तर्क उपस्थित किया है। तर्क सभी रखे ही जाते हैं। यदि ऐसे विपरीत तर्क न हो तो जीवका संसार कैसे बना रहे? यह सब निमित्ताधीनके तर्क संसार को बनाये रखनेके लिये ठीक हैं अर्थात् निमित्ताधीन दृष्टिसे ही संसार टीका हुआ है। यदि निमित्ताधीन दृष्टिको छोड़कर स्वभावदृष्टि करे तो संसार नहीं टिक सकता।२०।

उपादानका उत्तर—

पंच महाव्रत जोग त्रय और सकल व्यवहार,  
पर कौ निमित्त खपाय के तब पहुँचे भवपार॥३१॥

अर्थ :—उपादान कहता है पंच महाव्रत, तीन योग (मन, वचन, काय) की ओरका जोडाण और समस्त व्यवहार तथा पर निमित्तके लक्षको दूर करके ही जीव भवसे पार होता है।

ज्ञानमूर्ति आत्माका जितना पर लक्ष्य होता है वह सब विकार भाव है भले ही पंचमहाव्रत हो, किन्तु वे भी विकार हैं। वह विकारभाव तथा अन्य जो-जो व्यवहारभाव हैं वे सब रागको और निमित्तको स्वलक्ष्य द्वारा जीव जब छोड़ देते हैं तब ही वह मोक्षको पाता है। पुण्य-पापरहित आत्मस्वभावकी श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरताके द्वारा ही मुक्ति होती है उसमें कहीं राग नहीं होता। पंचमहाव्रत आस्रव है, विकार है वह आत्माका यथार्थ चारित्र नहीं है। जो उसे चारित्रका यथार्थ स्वरूप मानता है वह मिथ्यादृष्टि है। आत्माका चारित्र धर्म उससे परे है। जगत्के अज्ञानी जीवों को यह अति कठिन लग सकता है, किन्तु वही परम सत्य महा हितकारी है।

प्रश्न :—पंच महाव्रत चारित्र भले न हो, किन्तु वह धर्म तो है या नहीं ?

उत्तर :—पंच महाव्रत न तो चारित्र है और न धर्म ही। सर्व प्रकारके रागसे रहित मात्र ज्ञायकस्वभावी आत्माकी सम्यक्प्रतीति करनेके बाद ही विशेष स्वरूपकी स्थिरता करनेसे पूर्व पंच महाव्रतके शुभ विकारका भाव मुनिदशामें आ जाता है; किन्तु वह विकल्प है, राग है, विकार है, धर्म नहीं है। क्योंकि वे भाव आत्माके शुद्ध चारित्र और केवलज्ञानको रोकते हैं। आत्माके गुणको रोकनेवाले भावोंमें जो



धर्म मानता है वह आत्माके पवित्र गुणोंका घोर अनादर कर रहा है उसे आत्म-प्रतीति नहीं है।

आत्मप्रतीति युक्त सातवें-छठवें गुणस्थानमें आत्मानुभवमें झूलते हुये मुनिको पंचमहाव्रतका जो विकल्प छठवें गुणस्थानमें होता है वह राग है, आस्रव है। वह आत्माके केवलज्ञानमें विघ्न करता है। निमित्तने कहा था कि यह मोक्षमें मदद करता है; किन्तु उपादान कहता है कि वह मोक्षमें बाधक है। इन विकल्पोंको तोड़कर जीव जब स्वरूप स्थिरताकी श्रेणी मांडता है तब मोक्ष होता है; किंतु पंचमहाव्रतादिको रखकर कभी भी मोक्ष नहीं होता, इसलिये हे निमित्त ! तेरे द्वारा उपादानका एक भी कार्य नहीं होता।३१।

निमित्त कहता है—

कहै निमित्त जग में बड्यौ मो तैं बड्यौ न कोय,  
तीनलोक के नाथ सब मो प्रमाद तैं होय॥३२॥

अर्थ :—निमित्त कहता है कि जगत्में मैं बड़ा हूँ, मुझसे बड़ा कोई नहीं है, तीन लोकका नाथ भी मेरी कृपासे होता है।

नोट :—सम्यग्दर्शनकी भूमिकामें ज्ञानी जीवके शुभ विकल्प आने पर तीर्थङ्कर नामकर्मका बन्ध होता है, इस दृष्टान्तको उपस्थित करके निमित्त अपनी बलवताको प्रगट करना चाहता है।

आत्मस्वभावसे अजान और रागका पक्ष करनेवाला कहता है कि भले सम्यग्दृष्टि जीव शुभरागका आदर नहीं करते, उसे अपना नहीं मानते, तथापि त्रिलोकीनाथ तीर्थकरका जो पद है वह मेरी ही (निमित्तकी) कृपासे मिलता है। अर्थात् निमित्तकी ओर लक्ष किये बिना तीर्थकर गोत्र नहीं बँधता, अतः त्रिलोकीनाथ तीर्थकरदेव भी मेरे

ही कारण तीर्थकर होते हैं। यह निमित्त पक्षका तर्क है। किंतु इसमें भारी भूल है। निमित्तकी कृपासे [पर लक्ष्यी रागसे] तो जड़ परमाणुओंका बंध होता है, उनसे कहीं तीर्थकर पद प्रगट नहीं होता। तीर्थकर पद तो आत्माकी वीतरागदशासे प्रगट होता है। निमित्ताधीन पराश्रित दृष्टिवाला मानता है कि तीर्थकर गोत्रके पुण्य परमाणुओंका बंध होनेसे कोई बड़प्पन है। इसप्रकार वह पुद्गलकी धूलीसे आत्माका बड़प्पन बतलाता है, परन्तु निमित्तकी ओरके जिस भावसे तीर्थकर नामका कर्मरूपी जड़ परमाणुओंका बंध होता है वह भाव बड़ा है या उपादानकी ओरसे जिस भावसे उस रागको दूर करके पूर्ण वीतरागता और केवलज्ञान दशा प्रगट होती है, वह भाव बड़ा है ?

इतना ध्यान रखना चाहिये कि तीर्थकर नामकर्मके परमाणुओंका जो बंध होता है वह राग भावसे होता है, परन्तु वीतरागता और केवलज्ञान कहीं उस तीर्थकर नाम कर्मके बंधके राग भावसे नहीं होता, परन्तु उस रागभावको दूर करके स्वभावकी स्थिरतासे ही त्रिलोकपूज्य अरहन्त पद प्रगट होता है, इसलिये राग बड़ा नहीं है, किन्तु रागको दूर करके पूर्ण पदको प्राप्त करके स्वरूपको प्रगट करना ही महान् पद है।३२।

उपादानका उत्तर—

उपादान कहैं तू कहा चहुँगति में ले जाय;  
तो प्रसाद तें जीव सब दुःखी होहिं रे भाय॥३३॥

अर्थ :—उपादान कहता है अरे निमित्त, तू कौन ? तू तो जीवको चारों गतियोंमें ले जाता है। भाई, तेरी कृपासे सभी जीव दुःखी ही होते हैं।

निमित्त यह कहता था कि मेरी कृपासे जीव त्रिलोकीनाथ होता

है उसके विरोधमें उपादान कहता है कि तेरी कृपासे तो जीव संसारकी चारों गतियोंमें परिभ्रमण करता है। जिस भावसे तीर्थंकर नाम कर्मका बंध होता है वह भाव भी संसारका कारण है। इसे ध्यान देकर बराबर समझिये। यह तनिक कठिन सी बात है, जिस भावसे तीर्थंकर नाम कर्मका बंध होता है वह भाव विकार है, संसार है। क्योंकि जिस भावसे नया बंध हुआ उस रागके कारण जीवको नया भव ग्रहण करना पड़ता है, इसलिये निमित्तकी कृपासे (रागसे) जीव चार गतियोंमें परिभ्रमण करता है। रागका फल संसार है। यद्यपि तीर्थंकर प्रकृतिका बंध हो, इसप्रकारका आत्म-प्रतीति युक्त राग सम्यग्दृष्टिके ही हो सकता है तथापि वह तीर्थंकर नामकर्मके बंधके रागसे खुश नहीं होते, प्रत्युत्त उसे हानि कर्ता ही मानते हैं। जिस भावसे तीर्थंकर प्रकृतिका बंध होता है उस भावसे तीर्थंकर पद प्रगट नहीं होता; किन्तु उस भावके नाशसे केवलज्ञान और तीर्थंकर पद प्रगट होता है।

निमित्तने रागकी ओरसे तर्क उपस्थित किया था और उपादान स्वभावकी ओरसे तर्क उपस्थित करता है। सम्यग्ज्ञानके द्वारा इस प्रकार स्पष्टीकरण किया गया है कि निमित्तको लक्ष्य करके होनेवाला तीर्थंकर प्रकृतिका राग भाव भव-भ्रमण [संसारका कारण है और उपादान स्वरूपसे लक्ष्यसे स्थिरताका होना मोक्षका कारण है। निमित्तके लक्ष्यसे होनेवाला भाव उपादान स्वरूपकी स्थिरताको रोकनेवाला है। किसी भी प्रकारका राग भाव संसारका ही कारण है फिर चाहे वह राग तिर्यच पर्यायका हो अथवा तीर्थंकर प्रकृतिका हो। देखो, श्रेणिक राजाको आत्म-प्रतीति थी तथापि वे रागमें अटक रहे थे, इसलिये तीर्थंकर प्रकृतिका बंध होने पर भी उन्हें दो भव धारण करना पड़ेंगे।

प्रश्न :—दो भव ग्रहण करना पड़े यह भले ही अच्छा न हो, किन्तु जिस भवमें तीर्थकर प्रकृतिका बंध करता है यदि उसी भवसे मोक्ष प्राप्त करे तो जिस भावसे तीर्थकर प्रकृतिका बंध हुआ वह भाव अच्छा है या नहीं ?

उत्तर :—सिद्धान्तमें अन्तर नहीं पड़ता। ऊपर कहा गया है कि 'किसी भी प्रकारका राग भाव हो वह संसारका ही कारण है' भले ही कोई जीव जिस भवसे तीर्थकर प्रकृतिका बन्ध करता है उसी भवसे मोक्ष जाय तथापि जिस भावसे तीर्थकर प्रकृतिका बन्ध होता है वह राग भाव ही है और वह राग भाव केवलज्ञान और मोक्षको रोकने वाला है। जब उस रागको दूर किया जाता है तब केवलज्ञानी तीर्थकर होता है।

प्रश्न :—भले ही तीर्थकर प्रकृतिका राग बुरा हो, किन्तु जिस जीवने तीर्थकर प्रकृतिका बन्ध किया है उस जीवको केवलज्ञान अवश्य होता ही है। तीर्थकर प्रकृतिका बन्ध करनेसे इतना तो निश्चय हो ही जाता है कि वह जीव केवलज्ञान और मोक्षको अवश्य प्राप्त करेगा, इसलिये निमित्तका इतना बल तो मानोगे या नहीं ?

उत्तर :—अरे भाई ! केवलज्ञान और मोक्षदशा आत्माके सम्यग्दर्शनादि गुणोंसे होती है या जिस भावसे तीर्थकर प्रकृतिका बन्ध हुआ उस राग भावसे होती है। राग भावसे मोक्षका होना निश्चित नहीं है, किन्तु जिस जीवके सम्यग्दर्शनका अटूट बल है उसको लेकर वह अल्प कालमें ही मुक्ति प्राप्त करेगा, यह निश्चित ही है। जो रागसे धर्म मानता है और रागसे केवलज्ञानका होना मानता है वह तीर्थकर प्रकृति तो नहीं बाँधता, किन्तु तिर्यच आदि तुच्छ प्रकृतिको बाँधता है, क्योंकि उसकी मान्यतामें रागके प्रति आदर है,

इसलिये वह वीतरागस्वभावका अनादर करता हुआ अपनी ज्ञानशक्ति, हारकर हल्की गतिमें चला जायेगा।

और फिर यह भी एक समझने योग्य न्याय है कि जिस कारणसे तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध हुआ था उस कारणको दूर किये बिना वह प्रकृति फल भी नहीं देती। जिस तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध होता है वह तब तक फल नहीं देती जब तक जिस राग भावसे तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध किया था उससे विरुद्ध भावके द्वारा उस राग भावका सर्वथा क्षय करके केवलज्ञान प्रगट किया जाता और वह फल भी आत्माको नहीं मिलता, किन्तु बाह्यमें समवशरणादिकी रचनाके रूपमें प्रगट होता है। इस प्रकार जिस भावसे तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध किया था वह भाव तो केवलज्ञानके होने पर छूट ही जाता है, वह भाव केवलज्ञानमें क्या सहायता कर सकता है? इसलिये हे निमित्त, तेरी उपरोक्त दृष्टिसे जीव तीन लोकका नाथ तो नहीं होता, किन्तु अज्ञान भावसे वह तीन लोकमें परिभ्रमण करता है। तात्पर्य यह है कि तू जीवको चार गतियोंमें ले जाता है।

**उपादानदृष्टि** :—इसका अर्थ है स्वाधीन स्वभावकी स्वीकृति। मैं परिपूर्ण स्वरूप हूँ, अपने पवित्र दशारूपी कार्यको बिना किसीकी सहायताके मैं ही अपनी शक्तिसे करता हूँ, इसप्रकार अपने स्वभावकी श्रद्धाका जो बल है सो उपादानदृष्टि है और वह मुक्तिका उपाय है।

**निमित्तदृष्टि** :—इसका अर्थ है अपने स्वभावको भूलकर पर द्रव्यानुसारी भाव होते हैं ऐसा मानना। स्वाधीन आत्माके लक्ष्यको भूलकर जो भाव होते हैं वे सब भाव पराश्रित हैं और वह पराश्रित भाव संसारके कारण हैं। साक्षात् तीर्थंकरके लक्ष्यसे जो भाव होते

हैं वे भाव भी दुःखरूप और संसारके ही कारण हैं पुण्यका राग भी पर लक्ष्यसे ही होता है, इसलिये वह दुःख और संसारका ही कारण है अतः पराधीन दुःखरूप होनेसे निमित्तदृष्टि त्यागने योग्य है और स्वाधीन-सुखरूप होनेसे उपादान स्वभाव दृष्टि ही अंगीकार करने योग्य है।

अरे भाई ! यह तो श्री भगवानके पाससे आये हुये हीरे शाण पर चढ़ते हैं। यदि किसी भी न्यायकी विपरीत बातको पकड़ रखे तो संसार होता है और यदि यथार्थ संधि करके बराबर समझे तो मुक्ति होती है। अहा, यह बात तो वीतराग भगवान ही कहते हैं। वीतरागके सेवक भी तो वीतराग ही हैं। वीतराग और वीतरागके सेवकोंके अतिरिक्त यह बात करनेके लिये कोई समर्थ नहीं है। त्रैकालिक स्वभाव होने पर भी यह आत्मा अनादिकालसे क्यों परिभ्रमण कर रहा है ? बात यह है कि जीवने अनादि कालसे अपनी भूलको नहीं पहचाना। बंध-मुक्त स्वयं अपने भावसे ही होता है तथापि परके कारणके अपनेको बंधन-मुक्त मानता है। अनादिकालकी यह महा विपरीत शल्य रह गई है कि पुण्यसे और निमित्तोंसे लाभ होता है, परन्तु भाई ! आत्मामें अनादिकालसे किस प्रकारकी भूल है और वह किस कारणसे है यह जानकर उसे दूर किये बिना नहीं चल सकता। जीव यह मानता है कि पुण्य अच्छा है और पाप खराब; किन्तु मेरा स्वभाव अच्छा और सब विभाव खराब है इस प्रकार स्वभाव-परभावके बीचके भेदको वह नहीं जानता। वास्तवमें तो पुण्य और पाप दोनों एक ही प्रकारके (विभावरूप) भाव हैं वे दोनों आत्माके ज्ञानानन्दस्वरूपको भूलकर निमित्तकी ओर उन्मुख होनेवाले जो भाव होते हैं उसीके प्रकार हैं। उनमेंसे एक भी भाव स्वभावोन्मुखी नहीं है। एक देव, शास्त्र,

गुरुकी ओरका शुभभाव और दूसरा स्त्री, कुटुम्ब, पैसा इत्यादिकी ओरका अशुभभाव है, इन दोनोंकी ओर ढलते हुये भावोंसे अपना ज्ञान-आनन्दस्वरूप भिन्न है इसे समझे बिना अनादिका महान् भूलरूप अज्ञान दूर नहीं होता। यथार्थ ज्ञानमें सच्चे ही देव, शास्त्र, गुरु निमित्तरूप होते हैं। यदि सच्चे देव, शास्त्र, गुरुको निमित्तरूप न जाने तो अज्ञानी है और यदि यह माने कि उनसे अपनेको लाभ होता है तो भी मिथ्यात्व है। कोई भी निमित्त मेरा कुछ कर देगा इस प्रकारकी मान्यता महा भूल है और उसका फल दुःख ही है, इसलिये निमित्तके लक्ष्यसे जीव दुःखी ही होता है, सुखी नहीं होता।

इस बातको ठीक समझ लेना चाहिये कि निमित्तके लक्ष्यसे दुःख है, किन्तु निमित्तसे दुःख नहीं है। पैसा, स्त्री इत्यादि निमित्त है उससे जीव दुःखी नहीं, किन्तु 'यह वस्तु मेरी है उसमें मेरा सुख है, मैं उसका कर सकता हूँ' इस प्रकार निमित्तका आश्रय करके जीव दुःखी होते हैं। निमित्तका लक्ष्य करना वह अपना दोष है। उपादानके लक्ष्यसे परम आनन्द होता है और निमित्तके लक्ष्यसे दुःख होता है; किसी भी पर निमित्तका आलम्बन दुःखी ही है, इसलिये ज्ञानानन्दस्वरूपसे परिपूर्ण अपने उपादानको पहचान कर उसके लक्ष्यमें एकाग्रता करना सो परम सुख है। और यही मुक्तिका कारण है।३३।

कुदेवादिकके लक्ष्यसे अशुभभावके कारण जीव दुःखी होता है, परन्तु सच्चे देव, शास्त्र, गुरुके निमित्तके लक्ष्यसे शुभभावसे भी जीव दुःखी होता है जो ऐसा कहा है तो हे उपादान ! जीव सुखी किस रीतिसे होता है ? इसप्रकार निमित्त पूछता है—

कहै निमित्त जो दुःख सहै सो तुम हमहि लगाय,  
सुखी कौन तैं होत है ताको देहु बताय ॥३४॥

अर्थ :—निमित्त कहता है—जीव जो दुःख सहन करता है उसका दोष तू हमारे ऊपर लगाता है, किन्तु यह भी तो बताओ कि जीव सुखी किससे होता है ?

निमित्तके लक्ष्यसे अशुभभाव करनेसे जीव दुःखी होता है, परन्तु शुभभाव करके पुण्य बांधे तो भी जीव दुःखी होता है ऐसा कहा है तब फिर जीव सुखी किस प्रकार होता है ? यदि उपादानका लक्ष्य करके उसे पहचाने तो ही जीव सुखी हो। जब आत्मा सम्यग्दर्शनके द्वारा अपने स्वभावको पहचान कर अपनेमें गुण प्रगट करता है तब अधूरी अवस्थामें शुभराग आता है और जहाँ राग होता है वहाँ पर निमित्त होता ही है, क्योंकि स्वभावके लक्ष्यसे राग नहीं होता यदि आत्मस्वभावकी प्रतीति हो तो उस शुभरागको और शुभरागके निमित्तको (सच्चे देव, शास्त्र, गुरु इत्यादिको) व्यवहारसे धर्मका कारण कहा जाय, परन्तु शुभराग, निमित्त अथवा व्यवहार आत्माको वास्तवमें लाभ करे अथवा मुक्तिका कारण हो यह बात गलत है। राग निमित्त और व्यवहार रहित आत्माके शुद्ध स्वभावकी श्रद्धा-ज्ञान तथा रमणता ही मोक्षका सच्चा कारण है।

जिस भावसे सर्वार्थसिद्धिका भव मिलता है अथवा तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध होता है वह भाव स्वभावके सुखको चूक कर होता है, इसलिये दुःख ही है। जिस भावसे भव मिले और मुक्ति रुके वह भाव विकार है—दुःख है। जितने दुःख होते हैं वे सब भाव निमित्तोन्मुख होनेसे होते हैं। निमित्त तो परवस्तु है वह दुःख नहीं देता, परन्तु स्वलक्ष्यको चूक कर परलक्ष्यसे जीव दुःखी होता है।



इस बातको उपादानने दृढ़तापूर्वक सिद्ध कर दिया है, इसलिये अब निमित्तने यह प्रश्न उठाया है कि मेरी ओरके तो सभी भावोंसे जीव दुःखी ही होता है तो यह बताइये कि सुखी किससे होता है ? ।३४।

इसके उत्तरमें उपादान कहता है—

जो सुखको तुं सुख कहै सो सुख तो सुख नाहि।

ये सुख दुःखके मूल हैं, अविनाशि सुख मांहि॥३५॥

अर्थ :—उपादान कहता है कि तू जिस सुखको सुख कहता है वह सुख ही नहीं है, वह सुख तो दुःखका मूल है। आत्माके अंतरंगमें अविनाशी सुख है।

पिछले दोहेमें निमित्तके कहनेका यह आशय था कि एक आत्मा स्वको भूलकर परकी ओर झुकाव करता है तो वह दुःखी होता है तब सुखी किसे लेकर होता है ? अर्थात् जीव परके निमित्तके लक्ष्यसे शुभभाव करके पुण्य बाँधकर उसके फलमें सुखी होता है, इसलिये जीवको सुखी होनेमें भी निमित्तकी सहायता आवश्यक है। इसके उत्तरमें उपादान उसकी 'मूल भूल' को बतलाता है, कि हे भाई तु जिस पुण्यके फलको सुख कहता है वह सुख नहीं है, किन्तु वह तो दुःखका ही मूल है। पुण्यको और पुण्यके फलको अपना स्वरूप मानकर जीव मिथ्यात्वरूप महापापकी महा पुष्टि करके अनन्त संसारमें दुःखी होता है, इसलिये वहाँ पर पुण्यको दुःखका ही मूल कहा है। पंचेन्द्रियके विषयोंकी ओर उन्मुख होना तो दुःख है ही, किंतु पंच महाव्रतोंका भाव भी आस्रव है, दुःखका मूल है।

स्वभावकी ओरका जो भाव है सो सुखका मूल है और निमित्तकी ओरका जो भाव है सो दुःखका मूल है। उच्चसे उच्च पुण्य

परिणाम भी नाशवान है, इसलिये पुण्य सुखरूप नहीं है आत्माके ज्ञान, दर्शन, चारित्र ही सुखरूप हैं। श्री प्रवचनसारमें स्वर्गके सुखको गरम-खौलते हुये घीके समान कहा है। जैसे घी अपने स्वभावसे तो शीतलता करनेवाला है, किंतु अग्निका निमित्त पाकर स्वयं विकृत होने पर वही घी जलानेका काम करता है, इसीप्रकार आत्माका अनाकुल ज्ञानस्वभाव स्वयं सुखरूप है, किन्तु जब वह स्वभावसे च्युत होकर स्वयं निमित्तका लक्ष्य करता है तब आकुलता होती है, उसमें यदि शुभराग हो तो पुण्य है और अशुभराग हो तो पाप है, परन्तु पुण्य उस खोलते हुये घीकी तरह जीवको आकुलतामें जलानेवाला है और पापसे तो साक्षात् अग्निके समान नरकादिमें जीव अत्यंत दुःखी होता है, इसलिये हे निमित्त ! तू पुण्यके संयोगसे जीवको सुख मानता है, किन्तु उसमें सुख नहीं है, पुण्यके फलमें पंचेन्द्रियोंके संयोगसे जीवको किस प्रकार सुख होगा ? उलटा पंचेन्द्रियोंके विषयका लक्ष्य करनेसे जीव आकुलित होकर दुःख भोगता है। सुख तो आत्माके अन्तर्स्वभावमें है। अविनाशी ज्ञायकस्वभावके लक्ष्यसे उसकी श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरतासे ही जीव सुखी होता है, इसलिये अविनाशी उपादान स्वभावको पहिचानकर उसके लक्ष्यमें स्थिर होना चाहिये और निमित्तके लक्ष्यको छोड़ देना चाहिये। प्रथमसे ही सत्यका स्वीकार करना चाहिये।

आत्माको सुख चाहिये है, आत्माको अपने सुखके लिये क्या किसी अन्य पदार्थकी सहायताकी आवश्यकता है या अपने सुख स्वरूपकी श्रद्धा-ज्ञान करके उसमें स्वयं रमण करनेकी आवश्यकता है ? सुखी होनेके लिये पहले उसका उपाय निश्चित करना ही होगा। यह निश्चय करनेके लिये यह निमित्त-उपादानका संवाद चल रहा है।

यहाँ यह हजारों आत्मा आये हैं सो किसलिये ? यह सब सुखका मार्ग समझकर सुखी होनेके लिये आये हैं। कोई भी आत्मा नरकमें जाने और दुःखी होनेकी इच्छा नहीं करता। सुख स्वाधीनतामें होता है या पराधीनतामें ? यदि सुख परके आधीन हो तो वह नष्ट हो जाये और दुःख आ जाय, परन्तु सुख स्वाधीन है और वह आत्मामें ही स्वतन्त्र रूपमें विद्यमान है किसी परवस्तुकी उपस्थितिसे आत्मा को सुख मिलता है यह मान्यता गलत है, पराधीन दृष्टि है और वह महा दुःख देनेवाली है। पैसा इत्यादिसे मुझे सुख मिलता है अथवा सच्चे देव, शास्त्र, गुरुसे आत्माके धर्म होता है इसप्रकार जो पर द्रव्यकी आधीनताकी मान्यता है सो आत्मा को अपनी शक्तिमें लूला, लंगड़ा बना देनेवाली है। भला ऐसा होना किसे अच्छा लगेगा। जो जीव परवस्तुसे अपनेमें सुख-दुःख मानता है उस जीवने अपनेको शक्तिहीन लूला, लंगड़ा मान रखा है, जिसकी दृष्टि निमित्ताधीन है वह आत्मशक्तिको नहीं पहचानता और इसीलिये वे जीव चार गतिमें दुःखी हो रहे हैं। जगत्के जीव अपनी आत्माकी सामर्थ्यकी सम्भाल नहीं करते और आत्माको परावलंबी मानकर उससे सुख-शांति मानते हैं, किन्तु वह मान्यता यथार्थ नहीं है। परावलम्बनमें सुख-शांति है ही नहीं। स्वतंत्रताकी यथार्थ मान्यता न हो तो उससे सुख कदापि नहीं मिल सकता, इसलिये परतंत्रताकी (निमित्ताधीनताकी) श्रद्धामें दुःख ही है। धर्म अथवा सुख तो आत्माकी पहिचानके द्वारा ही होता है।

निमित्तने यह तर्क उपस्थित किया था कि भाई, तमाम दुःखोंकी पोट मेरे ऊपर रख दी है तो यह बताइये कि सुख-शांति कहाँसे मिलती है ? सभी प्रकारकी अनुकूलता हो तो सुख हो न ? तब उपादानने उसके तर्कका निषेध करते हुये कहा कि अनुकूल

सामग्रीमें आत्माका सुख है ही नहीं। 'शरीर ठीक हो' निरोगता हो, पुख्त उमर हो और भुक्त भोगी हो यह सब पार करनेके बाद मरनेके समय शांतिपूर्वक धर्म होता है, इस प्रकारकी महा पराधीन दृष्टिसे दुःखरूप संसार है। स्वाधीनताकी दृष्टिसे सत्समागम प्राप्त करके अंतरंगमें धर्म समझनेका उपाय न करे तो उसे धर्म प्राप्त नहीं होगा और मुक्तिका उपाय नहीं मिलेगा, वह संसारमें परिभ्रमण करता रहेगा। सत्को समझनेके अपूर्व सुयोगके समय जो समझनेसे इनकार करता है वह अपने स्वभावका अनादर करके संयोग बुद्धिसे असत्का आदर करके अनन्त संसारमें दुःखी होता हुआ परिभ्रमण करता है और जिसने अन्तरंगमें समझनेका उल्लास प्रगट करके स्वभावका सत्कार किया, वह उपादानके बलसे अल्प कालमें संसारसे मुक्त होकर परम सुख प्राप्त करेगा।

स्वाधीनता समझनेमें सुखका उपाय है तू अपनी अवस्थामें भूल करता है वह भूल तुझे कोई दूसरा नहीं कराता, परन्तु तूने अपनेको भूलकर 'मुझे परसे सुख-दुःख होता है' इस प्रकारकी विपरीत मान्यता कर रखी है, इसीलिये दुःख है। तू ही भूलको करनेवाला है और तू ही भूलको मिटानेवाला है। स्वभावको भूलकर तूने जो भूल की है उस भूलको स्वभावकी पहिचान करके दूर कर दे तो सुख तो तेरे अविनाशी स्वरूपमें भरा हुआ है, वह तुझे प्रगट हो जायगा ? इस प्रकार उपादान स्वाधीनतासे कार्य करता है।३५।

निमित्तका तर्क—

अविनाशी घट घट वसे सुख क्यों विलसत नांहि;

शुभ निमित्तके योग बिन परे परे विललाहिं॥३६॥

अर्थ :—निमित्त कहता है कि अविनाशी सुख तो घट घटमें

प्रत्येक जीवमें विद्यमान है तब फिर जीवोंको सुखका विलास-सुखका भोग क्यों नहीं होता। शुभ निमित्तके योगके बिना जीव क्षण-क्षणमें दुःखी हो रहा है।

हे उपादान ! तू कहता है कि—निमित्तसे सुख नहीं मिलता और अविनाशी उपादानसे ही सुख मिलता है तो सभी आत्माओंके स्वभावमें अविनाशी सुख तो है ही, तथापि वे सब वह क्यों नहीं प्राप्त कर पाते ? क्या यह सच नहीं है कि उन्हें योग्य निमित्त प्राप्त नहीं है। यदि आत्मामें ही अविनाशी सुख भरा हो तो सब जीव उसे क्यों नहीं भोगते ? और जीव बाह्य सुखमें क्यों झींकता रहता है ? उपादान तो सबको प्राप्त है, किन्तु अनुकूल निमित्त मिलने पर ही जीव सुखी होता है। इसप्रकार निमित्तकी ओरसे अज्ञानियोंके प्रश्न अनादिकालसे चले आ रहे हैं और उपादानकी पहिचानके बलसे उन प्रश्नोंको उड़ा देनेवाले ज्ञान भी अनादिकालसे है।

जिस आत्माको स्वाधीन सुख स्वभावकी खबर नहीं है वह इसप्रकार शंका करता है, कि यदि सुख आत्मामें ही हो तो ऐसा कौन जीव है जिसे सुख भोगनेकी भावना नहीं होगी और तब फिर वह सुखको क्यों नहीं भोगेगा ? इसलिये सुखके लिये अनुकूल निमित्त आवश्यक है और निमित्तके आधार पर ही आत्माका सुख है। मानव देह, आठ वर्षका काल, अच्छा क्षेत्र, निरोग शरीर और सत् श्रवण करनेवाला सत् पुरुषका सत्समागम यह सब योग हो तो जीव धर्मको प्राप्त कर सुखी होता, किन्तु जीवको अच्छे निमित्त नहीं मिले, इसलिये सुख प्राप्त नहीं हुआ और निमित्तके अभावमें जीव एकके बाद एक दुःख भोगता रहता है, इसलिये सुख पानेके लिये जीवको निमित्तकी सहायता आवश्यक है। इसप्रकार यह निमित्तका तर्क है। ३६।

उपादानका उत्तर :—

शुभ निमित्त इह जीवको मिल्यो कई भवसार।

पै इक सम्यग्दर्श विन भटकत फिख्यो गंवार॥३७॥

अर्थ :—उपादान कहता है—शुभ निमित्त इस जीवको कई भवोंमें मिले, परन्तु एक सम्यग्दर्शनके बिना यह मूर्ख जीव (अज्ञान भावसे) भटक रहा है।

इस दोहेमें निमित्ताधीन दृष्टिवाले जीवको गंवार कहा है। जिस जीवके सम्यग्दर्शन नहीं है वह गंवार है—अज्ञानी है। यह परम सत्य भाषा है। श्री सर्वज्ञ भगवानके पक्षसे और स्वभावकी साक्षीसे अनन्त सम्यग्ज्ञानी कहते हैं कि हे भाई ! जीवको सम्यग्दर्शनके बिना सुख नहीं होता। स्वयं ही अपने सारे स्वभावको भूल गया और परके साथ सुख—दुःखका सम्बन्ध मान लिया, इसलिये जीव परिभ्रमण करता है और दुःखी होता है। इस अनन्त संसारमें परिभ्रमण करते हुये जीवको अच्छे—उत्कृष्ट निमित्त मिले, साक्षात् श्री तीर्थंकर भगवान, उनका समवसरण (जिसमें इन्द्र, चक्रवर्ती, गणधर और सन्त मुनियोंके झुण्डके—झुण्ड आते थे ऐसी धर्मसभा) तथा दिव्यध्वनिका, जिसमें उत्कृष्ट उपदेशोंकी मूसलधार वर्षा होती थी, ऐसे सर्वोत्कृष्ट निमित्तोंके पास अनन्तबार जाकर बैठा और भगवानकी दिव्यवाणी को सुना तथापि तू अंतरंगकी रुचिके अभावसे (निमित्तोंके होने पर भी) धर्मको नहीं समझा। तूने उपादानकी जागृति नहीं की, इसलिये सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ। हे भाई ! जहाँ वस्तुस्वभाव ही स्वतंत्र है तब फिर उसमें निमित्त क्या करेगा ? यदि जीव स्वयं अपने स्वभावकी पहिचान करे तो कोई निमित्त उसे रोकनेके लिये समर्थ नहीं है और यदि जीव अपने

स्वभावको न पहिचाने तो कोई निमित्त उसे पहिचान करा देनेके लिये समर्थ नहीं है।

अनन्त कालसे संसारमें परिभ्रमण करते करते प्रत्येक जीव बड़ा राजा हुआ और समवसरणमें विराजमान साक्षात् चैतन्यदेव श्री अरहंत भगवानकी हीरा-माणिकके थालमें कल्पवृक्षोंके फल-फूलोंसे पूजा करते हुये इन्द्रोंको देखा और स्वयं भी साक्षात् भगवानकी पूजा की; किन्तु ज्ञानस्वभावी राग रहित अपने निरालम्बन आत्मस्वरूपको नहीं समझा, इसलिये सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं हुआ। इसीलिये गंवार होकर अज्ञान भावसे अनन्त संसारमें परिभ्रमण करता रहा। भगवान भिन्न और मैं भिन्न हूँ अपने स्वरूपसे मैं भी भगवान ही हूँ ऐसी यथार्थ पहिचानके बिना भगवानकी पूजा करनेसे धर्मका लाभ नहीं होता। कहीं भगवान किसीको सम्यग्दर्शन दे नहीं देते। धर्म किसीके आशीर्वादसे नहीं मिलता, मात्र अपनी पहचानसे ही धर्म होता है। इसके अतिरिक्त अन्य किसी उपायसे धर्मका प्रारम्भ नहीं होता।

मैं आत्मा स्वतंत्र भगवान हूँ, कोई पर वस्तु मेरा कल्याण नहीं कर सकती। अपनी पहिचानके द्वारा मैं ही अपना कल्याण करता हूँ। इसे समझे बिना जैनका द्रव्यलिंगी साधु हुआ, क्षमा धारण की, भगवानके पास गया, शास्त्रोंको पढ़ा तथा आत्माकी रुचि और प्रतीति किये बिना अनन्त दुःखी होकर संसारमें परिभ्रमण किया। यदि उपादानस्वरूप आत्माकी प्रतीति स्वयं न करे तो निमित्त क्या कर सकते हैं? जैनका द्रव्यलिंगी और भगवान तो निमित्त हैं और वास्तवमें क्षमाका शुभराग तथा शास्त्रका ज्ञान भी निमित्त है। यह सब निमित्त होने पर भी अपनी भूलके कारण ही जीवको सुख नहीं होता।

एक मात्र सम्यग्दर्शनके अतिरिक्त जीवको सुखी करनेमें कोई समर्थ नहीं है।

यदि निमित्त जीवको सुखी न करता हो और उपादानसे ही सुख प्रगट होता हो तो समस्त जीवोंके स्वभावमें अविनाशी सुख भरा ही है, उसे वे क्यों नहीं भोगते। इसप्रकार निमित्तका प्रश्न है उसके उत्तरमें कहते हैं—

हे भाई ! यह सच है कि सब जीवोंके स्वभावमें अविनाशी सुख है, किन्तु वह शक्तिरूप है और शक्तिका उपभोग नहीं होता, किन्तु जो जीव अपनी शक्तिकी सम्हाल करते हैं वे ही उसको भोगते हैं। यदि निमित्तसे सुख प्रगट होता हो तो निमित्त तो बहुतसे जीवोंके होता है तथापि उन सबके सुख क्यों प्रगट नहीं होता।

अनन्त संसारमें परिभ्रमण करते हुये अनेक भवोंमें इस जीवको शुभ \*निमित्त मिले, परन्तु एक पवित्र सम्यग्दर्शनके बिना जीव अपने गंवारपनसे संसारमें परिभ्रमण कर रहा है। जिसे अपने स्वाधीन स्वभावकी पहिचान नहीं है और जो यह मानता है कि मेरा सुख मुझे देव-शास्त्र-गुरु अथवा शुभराग इत्यादि पर निमित्त दे देंगे, उसे यहाँ पर ग्रन्थकारने गंवार—मूर्ख कहा है। रे गंवार ! तू स्वभावको भूलकर निमित्ताधीन दृष्टिसे ही परिभ्रमण करता रहा है। अपने ही दोषसे तूने परिभ्रमण किया है, तू यह मानता ही नहीं कि तुझमें स्वतंत्रता है, इसलिये तुझे सुखका अनुभव नहीं होता। कर्मोंने तेरे सुखको नहीं दबा रखा है, इसलिये तू अपनी मान्यताको बदल दे।

\* शुभ निमित्त = सच्चे देव-शास्त्र-गुरु। कुदेवादिक अशुभ निमित्त हैं, वे सुखके निमित्तके रूपमें भी नहीं कहे जा सकते। सच्चे देव-शास्त्र-गुरुको माननेवाले भी निमित्तके लक्ष्यसे अटक रहे हैं।



निमित्ताधीन दृष्टिवालेको यहाँ गंवार कहा है। इसमें द्वेष नहीं, किन्तु करुणा है। अवस्थाकी भूल बतानेके लिये गंवार कहा। साथ ही यह समझाया है कि भाई ! तेरा गंवारपन तेरी अवस्थाकी भूलसे है। स्वभावसे तो तू भगवान है, इसीलिये अपने स्वभावकी पहिचानके द्वारा तू अपनी पर्यायके गंवारपनको दूर कर दे। जो अपनी भूलको ही स्वीकार नहीं करते और निमित्तोंका ही दोष निकाला करते हैं वे अपनी भूलको दूर करने का प्रयत्न नहीं करते और इसीलिये उनका गंवारपन दूर नहीं होता। सम्यग्दर्शनके बिना मिथ्यादृष्टि होनेसे पागल जैसा होकर स्वभावको भूल गया और निमित्तोंकी श्रद्धा की, परन्तु स्वोन्मुख होकर अपनी श्रद्धा नहीं की; इसीलिये अनन्त संसारमें भव धारण करके दुःख भोग रहा है। अमुक निमित्त हो तो ऐसा हो इसप्रकार पराधीन दृष्टि ही रखी, इसीलिये सुख नहीं हुआ 'परन्तु मैं स्वतंत्र हूँ, अपनेमें अपने उपादानसे मैं जो कुछ करूँ वह हो, मुझे रोकनेमें कोई समर्थ नहीं' इसप्रकार उपादानकी सच्ची समझसे पराधीन दृष्टिका नाश करते ही जीवको अपने सुखका विलास होता है, इसलिये हे निमित्त ! उपादानकी जागृतिसे जीवको सुख होता है, जीवके सुख होनेमें निमित्तोंकी कोई भी सहायता नहीं होती। जैसे जहाँ चक्रवर्ती होता है वहाँ चपरासी भी हाजिर ही रहते हैं, किन्तु उस पुरुषका चक्रवर्तित्व कहीं चपरासीके कारण नहीं है, इसीप्रकार जीव जब अपनी जागृतिसे सम्यग्दर्शनादि प्रगट करके सुखी होता है तब निमित्त स्वयं उपस्थित होते हैं। परन्तु वे जीवके सुखके कर्ता नहीं हैं। जीव स्वयं यदि सच्ची समझ न करे तो कोई भी निमित्त उसे सुखी करनेमें समर्थ नहीं है।

सच्चा निमित्त मिले बिना सम्यग्ज्ञान नहीं होता अर्थात् जीव-जब स्वयं ज्ञान करता है तब सच्चे निमित्तोंकी उपस्थिति होती है।

यदि स्वयं न समझे और ज्ञान प्रगट न करे तो सत्समागम इत्यादिके संयोगको किसी भी प्रकार निमित्त भी नहीं मान सकते। अर्थात् जीव स्वयं सम्यग्ज्ञान प्रगट न करे तो निमित्त किसका ? इसलिये कभी भी कोई कार्य निमित्तसे नहीं होता। सभी कार्य सदा उपादानसे ही होते हैं, इसलिये सुख भी उपादानकी जागृतिके द्वारा सम्यग्दर्शनसे ही होता है।

इसप्रकार सुख जीवके सम्यग्दर्शनसे ही प्रगट हो सकता है, ऐसी उपादानकी बातको पात्र जीवोंने समझकर स्वीकार किया और निमित्तकी हार हुई। जिज्ञासु पात्र जीव उपादान निमित्तके संवादसे एकके बाद दूसरी बातका निर्णय करता आता है और निर्णय पूर्वक स्वीकार करता है इसप्रकार यहाँ तक तो निमित्तकी हार हुई। अब कुछ समय बाद निमित्त हार जायेगा और वह स्वयं अपनी हारको स्वीकार कर लेगा।३७।

सम्यग्दर्शन तक तो बात यह है कि सम्यग्दर्शनसे ही जीवको सुख होता है और सच्चे निमित्तोंके उपस्थित होने पर भी सम्यग्दर्शन होनेके कारण ही जीवको दुःख है, सम्यग्दर्शनकी बातको स्वीकार करानेके बाद अब सम्यक् चारित्र संबन्धी निमित्तकी ओरका तर्क यह है :—

सम्यग्दर्शन भये कहा त्वरित मुक्तिमें जाहिं ?

आगे ध्यान निमित्त है ते शिवको पहुँचाहिं ॥३८॥

अर्थ :—सम्यग्दर्शन होनेसे क्या जीव तत्काल मोक्षमें चला जाता है ? नहीं। आगे भी ध्यान निमित्त है जो मोक्ष में पहुँचाता है। यह निमित्तका तर्क है।

निमित्त कहता है कि यह सच है कि सम्यग्दर्शनसे ही जीवको

सुखका उपाय प्रगट होता है, सम्यग्दर्शनसे मुक्तिका उपाय होता है लेकिन निमित्तके लक्ष्यसे रागादि भावसे मोक्षका उपाय नहीं होता, इसप्रकार पंच महाव्रतकी क्रियासे धर्म होता है, देव-शास्त्र-गुरु अथवा पुण्यसे लाभ होता है, तीर्थकर प्रकृतिका भाव अच्छा है, इसप्रकारकी विपरीत मान्यताका तर्क निमित्तने अब छोड़ दिया है, किन्तु ऊपरकी दशामें निमित्तका आधार है, ऐसा तर्क करता है।

सम्यग्दर्शनके बाद भी निमित्त बलवान है, मात्र सम्यग्दर्शनसे ही मुक्ति नहीं हो जाती। सम्यग्दर्शनके बाद ही ध्यान करना पड़ता है, उस ध्यानमें भेदका विकल्प उठता है-राग होता है, इसलिये वह भी निमित्त हुआ या नहीं? आत्माकी यथार्थ पहिचान होनेके बाद स्थिरता होने पर भले ही महाव्रतादिके विकल्पको छोड़ दे, किन्तु वस्तुको ध्यानमें रखना पड़ता ही है। वस्तुमें स्थिरता करते हुये रागमिश्रित विचार आये बिना नहीं रहेंगे, इसलिये राग भी निमित्तरूप हुआ या नहीं? देखिये निमित्त कहाँ तक जा पहुँचा? अन्त तक निमित्तकी आवश्यकता होती है। इससे सिद्ध हुआ कि निमित्त ही बलवान है। निमित्तका यह अंतिम तर्क है।

निमित्तने जो तर्क उपस्थित किया है वह नय आदिके विकल्पके पक्षका तर्क है। सम्यग्दर्शनके बाद स्थिरता करते हुये बीचमें भेदका विकल्प आये बिना नहीं रहता। बीचमें विकल्परूप व्यवहार आता है यह बात सच है, किन्तु वह विकल्प मोक्षमार्गमें किंचित् मात्र भी सहायक नहीं है, निमित्तदृष्टिवाला तो उस विकल्पको मोक्षमार्ग समझ लेता है, वही दृष्टिकी 'मूलमें भूल' है।

आत्मस्वभावकी दृष्टिवाला जीव अभेदके पक्षसे समझता है अर्थात् जो भेद होता है अथवा राग होता है उसे वह जानता है, किन्तु

मोक्षमार्गके रूपमें अथवा मोक्षमार्गमें सहायकके रूपमें उसे वह स्वीकार नहीं करता और निमित्तको पकड़कर अज्ञानी जीव भेदके पक्षसे बात करता है, उसे अभेद स्वभावका भान नहीं है, इसलिये वह मानता है कि ध्यान करते हुए बीचमें भेदभंगका विकल्प आये बिना नहीं रहता; इसलिये वह विकल्प ही ध्यानमें सहायक है। इस प्रकार ज्ञानी और अज्ञानीकी दृष्टिमें ही अन्तर है।

स्वाश्रय स्वसन्मुख होकर ज्ञानमें एकाग्र होना ध्यान है, एक गुणको लक्ष्यमें लेकर विचार करना सो भेद-भंग है, यह भेद-भंग बीचमें आता ही है, इसलिये उस भेदके राग की सहायतासे ही मोक्ष होता है। यह निमित्तका तर्क है। इस तर्कमें परसे कोई सम्बन्ध नहीं रखा, अब तो भीतर जो विकल्परूप व्यवहार बीचमें आता है उस व्यवहारको जो अज्ञानी मोक्षमार्गके रूपमें मानता है उसीका यह तर्क है।३८।

उपादान निमित्तके तर्कका खंडन करता है—

छोर ध्यानकी धारणा मोर योग की रीत।

तोरि कर्मके जालको जोर लई शिव प्रीत॥३९॥

अर्थ :—उपादान कहता है कि ध्यानकी धारणाको छोड़कर योगकी रीतको समेटकर, कर्मजालको तोड़कर जीव अपने पुरुषार्थके द्वारा शिवपदकी प्राप्ति करते हैं।

हे निमित्त ! जो भेदका विकल्प उठता है उसे तू मोक्षका कारण कहता है, किन्तु वह तो बन्धका कारण है। जब जीव उस विकल्पको छोड़ता है तभी मोक्ष होता है। सम्यग्दर्शनके बाद ध्यानका विकल्प उठता है उसे छोड़कर मुक्ति होती है। उस विकल्पको रखकर कभी भी मुक्ति नहीं हो सकती। ध्यानकी धारणा

को छोड़कर अर्थात् स्वभावमें स्थिर होऊँ ऐसा जो विकल्प उठता है उसे छोड़कर अभेद स्वरूपमें स्थिर होने पर केवलज्ञान और मोक्ष होता है। इसलिये मात्र उपादानके बलसे ही कार्य होता है निमित्तसे कार्य नहीं होता। यहाँ पर उपादानको निश्चय और निमित्तको व्यवहारके रूपमें लिया है। स्वभावमें एकाग्रतारूप अभेद परिणति निश्चय है वही उपादान है, वही मोक्षका कारण है और जो भेदरूप विकल्प उठता है वह व्यवहार है, निमित्त है, वह मोक्षका कारण नहीं है। ध्यानकी धारणा को छोड़नेसे केवलज्ञान होता है तथा केवलज्ञान होनेके बाद भी मन, वचन, कायके योगका जो कंपन होता है वह भी मोक्षका कारण नहीं है; उस योगकी क्रियाको तोड़-मरोड़कर मोक्ष होता है।

मन, वचन, कायाके विकल्पको तोड़-मरोड़कर स्वरूपके भीतर पुरुषार्थ करके रागसे छूटकर अभेद स्वरूपमें स्थिर होने पर केवलज्ञान और अन्तमें मुक्ति होती है।

उपादानने स्वभावकी ओरसे तर्क उपस्थित करके निमित्तके पराधीनताके तर्कको खण्डित कर दिया है। इस प्रकार ३९ दोहों तक उपादान और निमित्तने परस्पर तर्क उपस्थित किये; उन दोनोंके तर्कोंको बराबर समझकर सम्यग्ज्ञानरूपी न्यायाधीश अपना निर्णय देता है कि उपादान आत्माकी ओरसे स्वाश्रित बात करनेवाला है और निमित्त आत्माको पराश्रित बतलाता है; इनमेंसे आत्माकी और प्रत्येक वस्तुकी स्वाधीनता बतानेवाले उपादानकी बात बिलकुल सच है और आत्माको तथा प्रत्येक वस्तुको पराधीन बतानेवाले निमित्तकी बात बिलकुल गलत है। इसलिये निमित्तकी पराजय घोषित किया जाता है।

निमित्त पक्षवालेकी ओरसे अन्तिम अपील की जाती कि निमित्तकी बात गलत क्यों है और निमित्त कैसे पराजित हो गया ? देखिये जब लोग धर्मसभामें एकत्रित होकर सत्समागम प्राप्त करते हैं तब उनके अच्छे भाव होते हैं और जब वे घर पर होते हैं तो ऐसे अच्छे भाव नहीं होते ! अच्छा निमित्त मिलनेसे अच्छे भाव होते हैं, इसलिये निमित्तका कुछ बल तो स्वीकार करना ही चाहिये।

उपादान इस अपीलका खण्डन करता हुआ कहता है कि स्वतः बदलनेसे अपने भाव बदलते हैं, निमित्तको लेकर किसीके भाव नहीं बदलते। उपादानके कार्यमें निमित्तका अंशमात्र भी बल नहीं है। उपादानके कार्यमें तो निमित्तकी नास्ति है। उपादानके बाहर ही वह लोटता रहता है, किन्तु वह उपादानमें प्रवेश नहीं कर सकता और वह दूरसे भी कोई असर, मदद और प्रेरणा नहीं कर सकता। यदि कोई यह कहे कि “निमित्त उपादानका कुछ ही नहीं करता, परन्तु जैसा निमित्त होता है तदनुसार उपादान स्वयं परिणमन करता है” तो यह बात भी बिलकुल गलत और वस्तुको पराधीन बतानेवाली है। निमित्तानुसार उपादान परिणमन नहीं करता, किन्तु उपादान स्वयं अपनी शक्तिसे स्वाधीनतया परिणमन करता है। योग्यतानुसार कार्य करता है।

सत्समागमके निमित्तका संयोग हुआ, इसलिये आपके भाव सुधर गये यह बात नहीं है। सत्समागमका निमित्त होने पर भी किसी जीवको अपने भावमें सच्ची बात नहीं बैठती और उल्टा वह सत्का विरोध करके दुर्गतिमें जाता है, क्योंकि उपादानके भाव स्वतंत्र हैं। निमित्तकी संगति होने पर भी यदि उपादान स्वयं जागृति न करे तो सत्यको नहीं समझा जा सकता, और जो सत्यको समझते हैं वे सब

अपने उपादानकी जागृति करके ही समझते हैं। श्री भगवानके समवशरणमें करोड़ों जीव भगवानकी वाणी सुनते हैं वहाँ पर वाणी सबके लिये एकसी होती है फिर जो जीव अपने उपादानकी जागृति करके जितना समझते हैं उन जीवोंके उतना ही निमित्त कहलाता है। कोई बारह अंगका ज्ञान करता है तो उसके बारह अंगोंके लिये भगवानकी वाणीका निमित्त कहलाता है और कोई किंचित् मात्र भी नहीं समझता तो उसके लिये किञ्चित् भी निमित्त नहीं कहलाता। कोई उल्टा समझता है तो उसको उल्टी समझमें निमित्त कहलाता है ! इससे सिद्ध होता है कि उपादान स्वाधीन रूपमें ही कार्य करता है, निमित्त तो मात्र आरोप रूप ही है। भगवानके पास और सच्चे गुरुके पास अनंतबार गया, किंतु स्वयं जागृत होकर अपने भीतरसे भूलको दूर करे तभी तो सत्यको समझेगा ? कोई देव, शास्त्र, गुरु उसके आत्मामें प्रवेश करके तो भूलको बाहर नहीं निकाल देंगे !

जैसे सिद्ध भगवानके ज्ञानके परिणमनमें लोकालोक निमित्त हैं, किन्तु क्या सिद्ध भगवानके ज्ञानको लोकालोकके कोई पदार्थ परिणमन कराते हैं अथवा उनका कोई असर भगवान पर होता है ? ऐसा तो कुछ नहीं होता, इसप्रकार सिद्ध भगवानके ज्ञानकी तरह सर्वत्र समझ लेना चाहिये कि निमित्त मात्र उपस्थितिरूप है, वह किसीको परिणमन नहीं कराता। अथवा उपादान पर उसका किंचित् मात्र भी असर नहीं होता, इसलिये उपादानकी ही विजय है। प्रत्येक जीव अपने-अपने अकेले स्वभावके अवलम्बनसे ही धर्मको पाते हैं, कोई भी जीव परावलम्बनसे धर्मको प्राप्त नहीं करता।

[ यहाँ पर यही प्रयोजन है कि जीवकी मुक्ति हो, इसलिये मुख्यतया जीवके धर्म पर ही उपादान-निमित्तके स्वरूपको घटित

किया है, परन्तु तदनुसार ही जीव अपना अधर्मभाव भी अपनी उपादानकी योग्यतासे करता है और जगतकी समस्त जड़ वस्तुओंकी क्रिया भी उन-उन जड़ वस्तुओंके उपादानसे होती है। शरीरका हलन-चलन, शब्दोंका बोला या लिखा जाना यह सब परमाणुके ही उपादानसे होता है, वहाँ निमित्त होने पर भी निमित्त उसमें कुछ भी नहीं करता, इसीप्रकार सर्वत्र समझ लेना चाहिये।]

### पराजय की स्वीकृति

अब यहाँ पर सब बातोंको स्वीकार करके निमित्त अपना पराजय स्वीकार करता है—

तब निमित्त हास्यो तहां अब नहिं जोर बसाय।

उपादान शिव लोकमें पहुँच्यो कर्म खपाय॥४०॥

अर्थ :—तब निमित्त हार गया, अब कुछ जोर नहीं करता और उपादान कर्मका क्षय करके शिवलोकमें (सिद्धपदमें) पहुँच गया।

उपादान-निमित्तके संवादसे अनकेप्रकार आत्माके स्वतंत्रताके स्वरूपकी प्रतीति करके उपादान पक्षवाला जीव अपनी सहज शक्तिको प्रगट करके मुक्तिमें अकेला शुद्ध संयोग रहित शुद्धरूपमें रह गया। जो अपने स्वभावसे शुद्ध रहा उसने अपनेमेंसे ही शुद्धता प्राप्त की है, किंतु जो राग-विकल्प इत्यादि छूट गये हैं उसमेंसे शुद्धताको प्राप्त नहीं किया। कर्मका और विकारभाव आदिका नाश करके तथा मनुष्य देह, पाँच इन्द्रियाँ और देव, शास्त्र, गुरु इत्यादि सबका संग छोड़कर उपादानस्वरूपकी एकाग्रताके बलसे जीवने अपनी शुद्धदशाको प्राप्त कर लिया।



प्रश्न :—इस दोहेमें लिखा है कि “अब नहीं जोर बसाय” अर्थात् जीव सिद्ध होनेके बाद निमित्तका कुछ वश नहीं चलता, किन्तु जीवकी विकारदशामें तो निमित्तका जोर चलता है न ?

उत्तर :—नहीं, निमित्त तो परवस्तु है। आत्माके ऊपर परवस्तुका जोर कदापि चल ही नहीं सकता, किन्तु जीव पहले अज्ञानदशामें निमित्तका बल मान रहा था और अब यथार्थ प्रतीति होने पर उसने उपादान-निमित्त दोनोंको स्वतंत्रतया जान लिया और अपनी स्वतंत्रशक्ति सम्हालकर स्वयं सिद्धदशा प्रगट कर ली। निमित्त हार गया इसका मतलब यह है कि अज्ञानदशामें निमित्तकी ही दृष्टि थी। ज्ञानदशाके प्रगट होने पर अज्ञानका नाश हो गया और निमित्त दृष्टि दूर हो गई, इसलिये यह कहा गया है कि निमित्त हार गया।४०।

इस प्रकार निमित्ताधीन दृष्टिका नाश होने पर उपादानको अपनेमें क्या लाभ हुआ ? यह बतलाते हैं—

उपादान जीत्यो तहां निजबल कर प्रकाश।

सुख अनन्त ध्रुव भोगवे अन्त न वरन्यो तास॥४१॥

अर्थ :—इसप्रकार निज बलका प्रकाश कर उपादान जीता [वह उपादान अब] उस अनन्त ध्रुव सुखको भोगता है जिसका अन्त नहीं हैं।

आत्माका स्वभाव शुद्ध ध्रुव अविनाशी है, उस स्वभावके बलसे उपादानने अपने केवलज्ञानका प्रकाश किया है और अब वह स्वाधीनतासे अनन्त ध्रुव सुखको भोग रहा है। पहले निमित्ताधीन दृष्टिसे पराधीनताके कारण [पर लक्ष्य करके] दुःख भोग रहा था और अब स्वभावको पहचानकर उपादानदृष्टिसे स्वाधीनतया शुद्धदशामें अनन्तकालके लिये सुखानुभव कर रहा है। सिद्धदशा

होनेके बाद समय-समय पर स्वभावमेंसे ही आनन्दका भोग किया करता है। अपने सुखके लिये जीवको शरीर, पैसा इत्यादि पर द्रव्यकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उन किसी के न होने पर भी सिद्ध भगवान स्वाधीनतया सम्पूर्ण सुखी हैं।

देखिये यहाँ कहा है कि उपादानने अपने बलका प्रकाश करके सुख प्राप्त किया है अपनेमें जो शक्ति थी उसे पहिचानकर उसके द्वारा बलको प्रगट करके ही सुख प्राप्त हुआ है। किसी निमित्तकी सहायतासे सुख प्राप्त नहीं किया।४१।

अब तत्त्व स्वरूपको कहते हैं उसमें बड़ा सुन्दर न्याय है।

उपादान अरु निमित्त ये सब जीवन पै वीर।

जो निजशक्ति संभार ही सो पहुँचे भव तीर॥४२॥

अर्थ :—उपादान और निमित्त ये सभी जीवोंके हैं, किन्तु जो वीर अपनी उपादान शक्तिकी सम्भाल करते हैं वे भवके पारको प्राप्त होते हैं।

सभी जीव भगवान हैं, और अनन्त गुणवाले हैं, सभी आत्माओंकी उपादानशक्ति समान है और सभी जीवोंके बाह्य निमित्त भी हैं, इसप्रकार उपादान और निमित्त दोनों त्रिकाल सभी जीवोंके हैं। ऐसी कोई आत्मा नहीं है जिसमें उपादानशक्तिकी पूर्णता न हो तथा ऐसी कोई आत्मा नहीं है कि जिसको निमित्त न हो। जैसा कार्य जीव स्वयं करता है उस समय उसे अनुकूल निमित्त होता ही है, निमित्त होता अवश्य है, किन्तु उपादानके कार्यमें कुछ करता नहीं है। उपादान और निमित्त दोनों अनादि अनन्त हैं। जो अपने उपादानकी जागृति करके धर्म समझते हैं उनके सत् निमित्त होता है और जो जीव धर्मको नहीं समझते उनके कर्म वगैरह निमित्त कहलाते

हैं। सिद्धोंके भी परिणमन इत्यादिमें काल, आकाश आदिका निमित्त है, और ज्ञानमें ज्ञेयके रूपमें सारा जगत् निमित्त है। किसी भी जगह अकेला उपादान नहीं होता, क्योंकि ज्ञान स्व-परको जाननेकी शक्तिवाला है, इसलिये वह उपादान और निमित्त दोनोंको जानता है यदि उपादान और निमित्त दोनों को न जाने तो ज्ञान असत् कहलायेगा तथापि ध्यान रहे कि उपादान और निमित्त दोनों स्वतंत्र पदार्थ हैं, वे एक-दूसरेका कुछ नहीं कर सकते। उपादान और निमित्त दोनों वस्तुएँ अपने अस्तित्वमें हैं जो जीव अपनी उपादानशक्तिको संभालता है उसीको सम्यग्दर्शनादि गुण प्रगट होकर मोक्ष होता है, किन्तु जो जीव उपादानको भूलकर निमित्तकी ओर लक्ष्य करता है वह अपनी शक्तिको भूलकर परसे भीख माँगनेवाला चौरासीका भिखारी है। पर लक्ष्यसे वह भिखारीपन दूर नहीं होता और जीव सुखी नहीं हो सकता। यदि अपने स्वभावकी स्वाधीनताको प्रतीतिमें ले तो सर्व पर द्रव्योंका मुँह देखना दूर हो जाय और स्वभावका स्वाधीन आनन्द प्रगट हो।

जब स्व लक्ष्य करके शक्तिकी सम्भाल की तब वह शक्ति प्रगट हुई अर्थात् सुख हुआ। उपादानशक्ति तो त्रिकाल है, वह मुक्तिका कारण नहीं, किन्तु उपादानशक्तिकी संभाल मुक्तिका कारण है। उपादानशक्तिकी संभाल ही दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग है पहले उपादानस्वभावकी श्रद्धा की कि मैं स्वयं अनन्त गुण शक्तिका पिंड हूँ, परसे पृथक् हूँ, मुझे परसे कुछ भी नहीं लेना है; किन्तु मेरे स्वभावमेंसे ही प्रगट होता है ऐसी प्रतीति और ज्ञान करके उस स्वभावमें स्थिरता करना सो उपादानशक्तिकी संभाल है और वही मोक्षका कारण है।

उपादानकारण और निमित्तकारण दोनों पर्यायरूप हैं द्रव्य, गुण त्रैकालिक हैं उसमें निमित्त नहीं होता। त्रैकालिक शक्ति उपादान है और उस त्रैकालिक शक्तिकी वर्तमान पर्याय उपादानकारण है। उपादानकारण अपनी पर्यायमें कैसा कार्य करता है और उस समय किस प्रकारका पर संयोग होता है यह बतानेके लिये पर वस्तुको निमित्तकारण कहा गया है। पर वस्तुको निमित्त कह कर उसका ज्ञान कराया है, क्योंकि ज्ञानकी शक्ति स्व-परको जानने की है परन्तु पर द्रव्यका कोई भी बल बतानेके लिये उसे निमित्त कहा गया है।

जहाँ यह कहा जाता है कि 'जीवने ज्ञानावरणीकर्मका बंध किया है' वहाँ वास्तवमें यह बतानेका आशय है कि जीवने अपनी पर्यायमें ज्ञानकी हीनता की है, परन्तु 'जीव जड़ परमाणुओंका कर्ता है' यह बतानेका आशय नहीं है।

प्रश्न :—उपादान तो सभी जीवोंके त्रिकाल है यह बात इस दोहेमें बताई गई और इस संवादमें यह भी कहा गया है कि मात्र उपादानकी शक्तिसे ही कार्य होता है, यदि मात्र उपादानसे ही कार्य होता हो तो अनन्तकालसे उपादानके होने पर भी पहले कभी शुद्ध कार्य प्रगट नहीं किया था; किन्तु तब फिर आज ही प्रगट करनेका क्या कारण है ?

उत्तर :—जो त्रिकाल उपादान है वह तो द्रव्यरूप है वह सब जीवोंके है, परन्तु कार्य तो पर्यायमें होता है। जब जो जीव अपनी उपादानशक्ति को संभालता है तब उस जीवके शुद्धता प्रगट हो जाती है। द्रव्यकी शक्ति त्रिकाल है, किन्तु जब स्वयं परिणति जागृत की तब वह शक्ति पर्यायरूप व्यक्त हो गई। जब स्वयं स्वोन्मुखी रुचि और अपनी ओरके भावके द्वारा अपनी परिणतिको जागृत करता है

तब होती है; उसमें कोई कारण नहीं। अर्थात् वास्तवमें जैसे द्रव्य-गुण अकारणीय है उसी प्रकार शुद्ध अथवा अशुद्ध पर्याय अकारणीय है। शुद्ध अथवा अशुद्ध पर्यायको उस-उस समयमें स्वयं स्वतः करता है, उसमें पूर्वापरकी दशा अथवा कोई पर द्रव्य वास्तविक कारण नहीं है। पर्यायका कारण पर्याय स्वयं ही है, पर्याय अपनी शक्तिसे जिस समय जागृत होती है उस समय जागृत हो सकती है। जिस पर्यायमें जितना स्वभावकी ओरका बल होता है (अर्थात् जितने अंशमें स्व-समय रूप परिणमन करता है) उस पर्यायमें उतनी शुद्धता होती है, कारण-कार्य एक ही समयमें अभेद है। यहाँ पर प्रत्येक पर्यायमें पुरुषार्थकी स्वतंत्रता बताई गई है। पहली पर्यायके मिथ्यात्व रूप होने पर भी दूसरे समयमें स्वरूपकी प्रतीति करके सम्यक्त्वरूप पर्याय प्रगट हो सकती है। यहाँ कोई पूछ सकता है कि जो सम्यक्त्व पहली पर्यायमें नहीं था वह दूसरी पर्यायमें कहाँसे आयेगा ? इसका उत्तर यह है कि उस समयकी पर्यायको स्वतंत्र सामर्थ्य प्रगट होनेसे सम्यक्त्व हुआ है, पूर्व पर्याय नई पर्यायकी कर्ता नहीं है, परन्तु नई प्रगट होनेवाली अवस्था स्वयं ही अपने पुरुषार्थकी योग्यतासे सम्यक्त्वरूप हुई है जिस समय पुरुषार्थ करता है उस समय सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, उसमें कोई कारण नहीं है, पर्यायका पुरुषार्थ स्वयं ही सम्यग्दर्शनका कारण है और वह पर्याय द्रव्यमेंसे ही प्रगट होती है, इसलिये अभेद-विवक्षासे द्रव्य स्वभाव ही सम्यग्दर्शनका कारण है।४२।

### उपादानकी महिमा

भैया महिमा ब्रह्मकी कैसे वरनी जाय ?

वचन अगोचर वस्तु है कहिवो वचन बताय ॥४३॥

अर्थ :—ग्रन्थकार भैया भगवतीदासजी आत्मस्वभावकी महिमाका वर्णन करते हुये कहते हैं, कि भाई ! ब्रह्मकी (आत्मस्वभावकी) महिमाका वर्णन कैसे किया जा सकता है वह वस्तु वचन अगोचर है, उसे किन वचनोंके द्वारा बताया जा सकता है।

जो जीव वस्तुके स्वतंत्र उपादानस्वभावको समझता है उसे उस स्वभावकी महिमा प्रगट हुये बिना नहीं रहती। अहा ! ऐसा अच्छा उपादानस्वभाव। अनादि अनन्त संपूर्ण स्वतंत्रतासे वस्तु टिक रही है, ऐसे वस्तुस्वभावको वचनसे कैसे वर्णन किया जा सकता है, वचनसे उसकी महिमाका पार नहीं आ सकता। ज्ञानके द्वारा ही उसकी यथार्थ महिमा जानी जा सकती है। स्वभावकी महिमा बहुत है वह वचनसे परे है फिर भी उसे वचनके द्वारा कहना सो पूरा कैसे कहा जा सकता है ? इसलिये हे भाई ! तू अपनी ज्ञान सामर्थ्यके द्वारा अपने स्वभावको समझ। यदि तू स्वयं समझे तो अपने स्वभावका पार पाये। एक ही समयमें अनादि संसारका नाश करके जिसके बलसे परम पवित्र परमात्मदशा प्रगट होती है ऐसे भगवान आत्माके स्वभावकी महिमाको हम कहाँ तक कहें। हे भव्य जीवों ! तुम स्वयं स्वभावको समझो।४३।

अब ग्रन्थकार इस संवादकी सुन्दरताको बतलाते हैं और यह भी बतलाते हैं, कि इस संवादसे ज्ञानी और अज्ञानीको किस प्रकारका अभिप्राय होगा।

उपादान अरु निमित्तको सरस बन्यौ संवाद।

सम्यग्दृष्टिको सरल है मूर्खको बकवाद॥४४॥

अर्थ :—उपादान और निमित्तका यह सुन्दर संवाद बना है,

यह सम्यग्दृष्टिके लिये सरल है और मूर्ख (मिथ्यादृष्टि) के लिये बकवाद मालूम होगी।

उपादान-निमित्तके सच्चे स्वरूपको बतानेवाला आत्माके सहज स्वतंत्र स्वभावका यह वर्णन बहुत ही अच्छा है। जो जीव वस्तुके स्वाधीन स्वरूपको समझते हैं उन सच्ची दृष्टिवाले जीवोंके लिये तो वह सुगम है, वे ऐसी वस्तुकी स्वतंत्रताको समझकर आनन्द करेंगे, किन्तु जिसे वस्तुकी स्वतंत्रताकी प्रतीति नहीं है और जो आत्माको पराधीन मानता है, उस मूर्ख अज्ञानीको तो यह बात केवल बकवाद मालूम होगी वह वस्तुके स्वतंत्र स्वभावकी महिमाको नहीं जान सकता। ज्ञानी वस्तुको भिन्न-भिन्न और स्वभावसे देखते हैं, किन्तु अज्ञानी संयोगबुद्धिसे देखते हैं, इसलिये वह संयोगसे कार्य होता है इसप्रकार मिथ्या मानते हैं। परन्तु इस बातको ज्ञानी ही यथार्थ रीत्या जानते हैं कि वस्तु परसे भिन्न असंयोगी है और उसका कार्य भी स्वतंत्र अपनी शक्तिसे ही होता है। अज्ञानीको तो ऐसा लगेगा कि भला यह किसकी बात है ? भला, क्या आत्माको कोई सहायता नहीं कर सकता ? किन्तु भाई ! यह बात तेरे ही स्वरूपकी है निजस्वरूपकी प्रतीतिके बिना अनादि कालसे दुःखमें परिभ्रमण कर रहा है, तेरा यह परिभ्रमण कैसे दूर हो और सच्चा सुख प्रगट होकर मुक्ति कैसे हो ? यह बताया जाता है। संयोग बुद्धिसे पर पदार्थोंको सहायक मानकर तू अनादिकालसे परिभ्रमण कर रहा है अब तुझे तेरा परसे भिन्न स्वाधीन स्वरूप बतलाकर ज्ञानीजन उस विपरीत मान्यताको छोड़नेका उपदेश देते हैं।

ज्ञानीजन तुझे कुछ देते नहीं हैं, तू ही अपना तारनहार है, तेरी असमझसे ही तेरा बिगाड़ है और सच्ची समझसे ही तेरा सुधार है।

यदि जीव अपनी इस स्वाधीनताको समझ ले तो उसे अपनी महिमा ज्ञात हो जाय, किन्तु जिसे अपनी स्वाधीनता समझमें नहीं आती उसे यह संवाद केवल बकवाद रूप मालूम होगा। जो जिसकी महिमाको जानता है वह तत्संबंधी बातको बड़े ही चाहसे सुनता है, परन्तु जिसकी महिमाको नहीं जानता है उसकी बात नहीं रुचती। इस संबंधमें यहाँ एक दृष्टांत दिया जाता है :—

पहले जमानेमें जब बेलदार लोग सारे दिन मजदूरी करके घर आते और सब एकत्रित होकर बैठते तब उस समय उनका पुरोहित उन्हें उनके बाप-दादाओंकी पुरानी कथा सुनाता हुआ कहने लगता कि तुम्हारी चौथी पीढ़ीका बाप तो बहुत बड़ा राज्याधिकारी था। बेलदार लोग तो सारे दिन मजदूरी करनेसे थके होते थे, इसलिये जब पुरोहित उनके बाप-दादाओंकी बात करता तब वे झोंका खाने लगते और पुरोहितसे कहने लगते कि “हाँ, बापू कहते जाइये” जब बेलदार लोग सुनने पर ध्यान नहीं देते तब पुरोहित कहता कि अरे जरा सुनो तो, मैं तुम्हारे बाप-दादाओंके बड़प्पनकी बात कह रहा हूँ। तब बेलदार लोग कहते कि महाराज ! कहते जाइये अर्थात् आप तो अपनी बात कहते जाइये। तब पुरोहित कहता कि अरे भाई यह तो तुम्हें सुनानेके लिये कह रहा हूँ मुझे तो सब मालूम ही है।

इसीप्रकार यहाँ पर संसारकी थकानसे थके हुये जीवोंको ज्ञानी गुरु उनके स्वभावकी अपूर्व महिमा बतलाते हैं, परन्तु जिसे स्वभावकी महिमाकी खबर नहीं है और स्वभावके महिमाकी रुचि नहीं है उन बेलदार जैसे जीवोंको स्वभावकी महिमा सुननेकी उमंग नहीं होती। अर्थात् उनके लिये क्या तो उपादान और क्या निमित्त और क्या वस्तुकी स्वतंत्रता यह सब बकवाद सा ही मालूम होता



है। वे सब आत्माकी परवाह न करनेवाले बेलदारोंकी तरह संसारके मजदूर हैं। ज्ञानी कहते हैं कि हे भाई ! तेरा स्वभाव क्या है ? विकार क्या है ? और वह विकार कैसे दूर हो सकता है ? यह तुझे समझाते हैं। इसलिये तू अपने स्वभावकी महिमाको जानकर विवेक पूर्वक समझे तो तेरा संसार परिभ्रमणका दुःख दूर हो जायेगा और तुझे शांति प्राप्त होगी। यह तेरे ही सुखके लिये कहा जा रहा है और तेरे ही स्वभावकी महिमा बतलाई जा रही है, इसलिये तू ठीक निर्णय करके समझ। जो जीव जिज्ञासु हैं उसे श्रीगुरुकी ऐसी बात सुनकर अवश्य ही स्वभावकी महिमा प्रगट होती है। और वह बराबर निर्णय करके अवश्य समझ लेता है।

जिज्ञासु जीवोंको इस उपादान-निमित्तके स्वरूपको समझनेमें दुलक्ष्य नहीं करना चाहिये। इसमें महान् सिद्धान्त निहित है। इसे ठीक समझकर इसका निर्णय करना चाहिये। उपादान—निमित्तकी स्वतंत्रताका निर्णय किये बिना कदापि सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं होता और बिना सम्यग्दर्शनके धर्म नहीं होता। ४४।

अब अन्तमें ग्रन्थकार कहते हैं कि जो आत्माके गुणको पहचानता है वही इस संवादके रहस्यको जानता है।

जो जानै गुण ब्रह्मके सो जानै यह भेद।

साख जिनागम सो मिलै तो मत कीज्यो खेद॥४५॥

अर्थ :—जो जीव आत्माके गुणको (स्वभावको) जानते हैं वे इस (उपादान-निमित्तके संवादके) रहस्यको जानते हैं उपादान-निमित्तके इस स्वरूपकी साक्षी श्री जिनागमसे मिलती है, इसलिये इस सम्बन्धमें खेद नहीं करना चाहिये, शंका नहीं करना चाहिये।

उपादान और निमित्त दोनों पदार्थ त्रिकाल हैं, दोनोंमेंसे एक भी

अभावरूप नहीं है। सिद्धदशामें भी आकाश इत्यादि निमित्त है। अरे ! ज्ञानकी अपेक्षासे समस्त लोकालोक निमित्त है जगत्में स्व और पर पदार्थ हैं और ज्ञानका स्वभाव स्व-पर प्रकाशक ज्ञायक है, इसलिये यदि ज्ञान स्व-परको भिन्न-भिन्न और स्वतंत्र न जाने तो वह मिथ्याज्ञान है, इसलिये स्व और परको जैसाका तैसा जानना चाहिये। उपादानको स्वके रूपमें और निमित्तको परके रूपमें जानना ठीक है। दोनोंको जो जैसे हैं उन्हें उनके गुणोंके द्वारा जानकर अपने उपादानस्वभावको पहचानकर निरन्तर अपना शुद्ध उपादानका आलम्बन (-आश्रय) करना चाहिये।

(१) उपादान-निमित्तको जान लेना चाहिये, किन्तु यह नहीं समझना चाहिये कि निमित्तके कारण उपादानमें कोई कार्य होता है अथवा निमित्त-उपादानका कोई कार्य कर सकता है।

(२) मात्र उपादानसे ही कार्य होता है, निमित्त कुछ नहीं करता, इसलिये निमित्त कुछ है ही नहीं—यह भी नहीं मानना चाहिये।

(३) निमित्तको जानना तो चाहिये, किन्तु वह उपादानसे भिन्न पदार्थ है, इसलिये वह उपादानमें किसी भी प्रकारकी सहायता अथवा असर नहीं कर सकता, इस प्रकार समझना सो सम्यग्ज्ञान है। यदि निमित्तकी उपस्थितिके कारण कार्यका होना माने तो वह मिथ्याज्ञान है।

इस प्रकार इस संवादके द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि उपादान वस्तुकी निजशक्ति है और पर संयोग निमित्त है। निमित्त जीवका [उपादानका] कुछ भी कार्य नहीं करता, किन्तु उपादान स्वयं ही अपना कार्य करता है। सारे संवादमें कहीं भी यह बात

स्वीकार नहीं की गई है कि “निमित्तसे कार्य होता है” विपरीतदशामें विकार भी जीव स्वयं ही करता है, निमित्त विकार नहीं करता, परन्तु इस संवादमें मुख्यता औचित्यकी बात ली गई है। सम्यग्दर्शनसे सिद्धदशा तक जीवकी ही शक्तिसे कार्य होता है; यह सिद्ध किया गया है, किन्तु निमित्तकी बलवता कहीं भी नहीं मानी गई। इससे यदि कोई जीव अपनी नासमझी के कारण यह मान बैठे कि यह तो एकान्त हो गया, सर्वत्र उपादानसे ही कार्य हो और निमित्तसे कहीं भी न हो इसमें अनेकान्तपन कहाँ है? तो ग्रन्थकार कहते हैं कि इसमें स्वतंत्र वस्तुस्वभाव सिद्ध किया है और निमित्तका पक्ष नहीं किया [निमित्तका यथार्थ ज्ञान है, परन्तु उसका पक्ष नहीं है उस ओर लक्ष्यका खिंचाव नहीं है] इसलिये खेद नहीं करना चाहिये, किन्तु उत्साह पूर्वक समझ कर इस बातको स्वीकार करना चाहिये। क्योंकि इस बातकी साख श्री जिनागमसे मिलती है।

श्री जिनागम वस्तुको सदा स्वतंत्र बतलाता है। वस्तुस्वरूप ही स्वतंत्र है। जिनेन्द्रदेवका प्रत्येक वचन पुरुषार्थकी जागृतिकी वृद्धिके लिये ही है। यदि जिनेन्द्रदेवके एक भी वचनमेंसे पुरुषार्थको गौण करनेका आशय निकाला जाय तो मानना चाहिये कि वह जीव जिनेन्द्रदेवके उपदेशको समझा ही नहीं है। निमित्तोंका और कर्मोंका ज्ञान पुरुषार्थमें अटक जानेके लिये नहीं कहा है, किन्तु निमित्तरूप पर वस्तुएँ हैं और जीवके परिणाम भी उसके पक्षसे अनेक प्रकार विकारी होते हैं, यह जानकर अपने निजपरिणामकी संभाल करनेके लिये निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धका ज्ञान कराया है। वह ज्ञान सत्य पुरुषार्थकी वृद्धिके लिये ही है, किन्तु जो जीव यह कहता है कि ‘तीव्र कर्मोदय आकर मुझे हैरान करेगा तो मेरा पुरुषार्थ नहीं चल सकेगा’ उस जीवको स्वयं पुरुषार्थ नहीं करना है, इसलिये वह

पुरुषार्थ हीनताकी बातें करता है। अरे भाई ! पहले जब तुझे कर्मोंकी खबर नहीं थी तब तू ऐसा तर्क नहीं करता था और कर्मोंका ज्ञान होने पर तू पुरुषार्थकी शंका करता है, तो क्या अब निमित्तका यथार्थ ज्ञान होनेसे तुझे हानि होगी, इसलिये हे जीव ! निमित्त कर्मोंकी ओरका लक्ष्य छोड़कर तू अपने ज्ञानको उपादानके लक्ष्यमें लगाकर सच्चा पुरुषार्थ कर। तू जितना पुरुषार्थ करेगा उतना काम आयेगा, तेरे पुरुषार्थको रोकनेके लिये विश्वमें कोई समर्थ नहीं है। जगत्में सब कुछ स्वतंत्र है। रजकणसे लेकर सिद्ध तक सभी जड़ चेतन पदार्थ स्वतंत्र हैं। एक पदार्थका दूसरे पदार्थके साथ किंचित् मात्र भी संबंध नहीं है तब फिर किसी भी निमित्तरूप पदार्थ हों वे उपादानका क्या कर सकते हैं ? उपादान स्वयं जिस प्रकार परिणमन करता है उस प्रकार पर पदार्थमें निमित्तारोप होता है निमित्त तो आरोप मात्र कारण है, उसकी उपादानमें तीनों काल नास्ति है। और अस्ति-नास्तिरूप ऐसा अनेकान्त वस्तुस्वरूप है। परन्तु एक पदार्थ दूसरे पदार्थमें कुछ कर सकता है इसप्रकारकी मान्यतासे पदार्थोंकी स्वतंत्रता नहीं रहती और एकान्त आ जाता है।

इसलिये उपादान-निमित्तके संवादके द्वारा जो वस्तुस्वरूप समझाया गया है उसे जानकर हे भव्य जीव ! तुम खेदका परित्याग करो। पर द्रव्यकी सहायता आवश्यक है इस मान्यताका परित्याग करो। अपनी आत्माको पराधीन मानना ही सबसे बड़ा खेद है। अब आत्माके स्वाधीन स्वरूपको जानकर उस खेदका परित्याग करो; क्योंकि श्री जिनागमका प्रत्येक वचन वस्तुस्वरूपको स्वतंत्र घोषित करता है और जीवको सत्य पुरुषार्थ करनेके लिये प्रेरित करता है।

यह बात विशेष ध्यानमें रखना चाहिये कि निमित्त वस्तु है तो अवश्य। सच्चे देव, शास्त्र, गुरुको न पहचाने और कहे कि

निमित्तका क्या काम है ? उपादान स्वतंत्र है इसप्रकार उपादानको जाने बिना यदि स्वच्छंद होकर प्रवृत्ति करे तो इससे उसका अज्ञान ही दृढ़ होगा ऐसे जीवको धर्म तो हो ही नहीं सकता, उलटा शुभरागको छोड़कर अशुभरागमें प्रवृत्ति करेगा। श्रीमद् राजचन्द्रजीने आत्मसिद्धिमें कहा है कि—

उपादानका नाम लइ ये जे तजे निमित्त।  
पामे नहिं परमार्थने रहे भ्रान्तिमां स्थित॥  
उपादानका नाम ले यदि यह तजे निमित्त।  
पाये नहिं परमार्थको रहे भ्रान्तिमें स्थित॥

ध्यान रहे कि यहाँ उपादानका मात्र नाम लेकर जो निमित्तका निषेध करता है ऐसे जीवकी बात है, किन्तु जो उपादानके भावको समझकर निमित्तका लक्ष्य छोड़ देते हैं वे सिद्धस्वरूपको प्राप्त होते हैं। इस गाथाको उलट कर कहा जाय तो—

उपादाननो भाव लई ये जे तजे निमित्त।  
पामे ते सिद्धत्वने रहे स्वरूपमां स्थित॥  
उपादानका भाव ले यदि यह तजे निमित्त।  
पाये वह सिद्धत्वको रहे स्वरूपमें स्थित॥

अज्ञानी जीव सत् निमित्तको नहीं जानता और उपादानको भी नहीं जानता, वह जीव तो अज्ञानी ही रहता है, किन्तु जो जीव अपने उपादानस्वभावके स्वतंत्र भावोंको पहिचानकर उस स्वभावकी एकाग्रताके द्वारा निमित्तके लक्ष्यको छोड़ देते हैं वे जीव अपने स्वरूपमें स्थित रहते हैं, उनकी भ्रान्तिका और रागका नाश हो जाता है और वे केवलज्ञानको प्राप्त कर मुक्त हो जाते हैं।

जो जीव उपादान-निमित्तके स्वरूपको नहीं जानता और मात्र

उपादानकी बातें करता है तथा सच्चे निमित्तको जानता ही नहीं वह पापी है। यहाँ पर यह आशय नहीं है कि 'निमित्तसे कोई कार्य होता है', किन्तु यहाँ अपने भावको समझनेकी बात है जब जीवके सत् निमित्तके समागमका भाव अन्तरसे नहीं बैठा और स्त्री, पैसा इत्यादिके समागमका भाव जम गया तब उसे धर्मके भावका अनादर और संसारकी ओरके विपरीत भावका आदर हो जाता है। अपनेमें वर्तमान तीव्र राग है तथापि वह उस रागका विवेक नहीं करता, (शुभाशुभके बीच व्यवहारसे भी भेद नहीं करता) वह जीव विपरीत भावका ही सेवन करता रहता है।

वह विपरीत भाव किसका ? क्या तू वीतरागी हो गया है। यदि तुझे विकल्प और निमित्तका लक्ष्य ही न होता तो तुझे शुभ निमित्तके भी लक्ष्यका प्रयोजन न होता, किन्तु जब विकल्प और निमित्तका लक्ष्य है तब तो उसका अवश्य विवेक करना चाहिये। इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि निमित्तसे कोई हानि-लाभ होता है, परन्तु अपने भावका उत्तरदायित्व स्वयं स्वीकार करना होगा। जो अपनी वर्तमान पर्यायके भावको और उसके योग्य निमित्तोंको नहीं पहचानता वह त्रैकालिक स्वभावको कैसे जानेगा ?

जीव या तो निमित्तसे कार्य होता है यह मानकर पुरुषार्थ हीन होता है। अथवा निमित्तका और स्व-पर्यायका विवेक भूल कर स्वच्छंद हो जाता है यह दोनों विपरीत भाव हैं। वे विपरीत भाव ही जीवको उपादानकी स्वतंत्रता नहीं समझने देते। यदि जीव विपरीत भावको दूर करके सत्को समझे तो उसे मोक्षमार्ग होता है। जब जीव अपने भावसे सत्को समझे तब सत् निमित्त होते ही हैं, क्योंकि जिसे सत् स्वभावके प्रति बहुमान है उसे सत् निमित्तोंकी ओरका

लक्ष्य और बहुमान हो ही जाता है। जिसे सच्चे देव, शास्त्र, गुरुके प्रति अनादर है उसे मानों अपने ही सत् स्वरूपके प्रति अनादर है और सत् स्वरूपका अनादर ही निगोद भाव है, उस भावका फल निगोददशा है।

इसलिये जिज्ञासुओंको सभी पहलुओंसे उपादान-निमित्तको जो जैसे हैं उस प्रकार ठीक जानकर निश्चय करना चाहिये। यह निश्चय करने पर पराधीनताकी मान्यताका खेद दूर हो जाता है और स्वाधीनताका सच्चा सुख प्रगट होता है।४५।

ग्रन्थकर्ताका नाम और स्थान

नगर आगरा अग्र है जैनी जनको वास,  
तिह थानक रचना करी 'भैया' स्वमतिप्रकाश॥४६॥

अर्थ :—आगरा शहर अग्रगण्य नगरोंमेंसे है जिसमें जैन लोगोंका [अच्छी संख्यामें] निवास है। वहाँ पर भैया भगवतीदास अपनी बुद्धिके प्रकाशानुसार यह रचना की है अथवा अपने ज्ञानके प्रकाशके लिये यह रचना की है।

उपादान-निमित्तके बीच बटवारेके कथनका यह जो अधिकार कहा गया है वह सर्वज्ञदेवकी परम्परासे कथित तत्त्वका सार है और उसमेंसे अपनी बुद्धिके अनुसार जो मैं समझ सका हूँ वही मैंने इस संवादमें प्रगट किया है।

रचना काल

संवत् विक्रम भूपको सत्तरहसैं पंचास,  
फाल्गुन पहले पक्षमें दशों दिशा परकाश॥४७॥

अर्थ :—विक्रम संवत् १७५० के फाल्गुन मासके प्रथम पक्षमें इस संवादकी रचना की गई।

जिस प्रकार पूर्णिमाके चन्द्रमाका प्रकाश दशों दिशाओंमें फैल जाता है उसी प्रकार यह उपादान-निमित्त सम्बन्धी तत्त्वचर्चा दशों दिशाओंमें तत्त्वका प्रकाश करेगी-यत्र तत्र इसीकी चर्चा होगी। अर्थात् यह तत्त्वज्ञान सर्वत्र प्रकाशित होगा। इस प्रकार अन्तिम मंगलके साथ यह अधिकार पूर्ण होता है।



ॐ

महेश्वर विद्यालंकार



मूलमें भूल

[ भाग-२ ]

विद्वद्वर्य पण्डित बनारसीदासजी कृत  
उपादान-निमित्त दोहा

गुरु उपदेश निमित्त बिन उपादान बलहीन।  
ज्यों नर दूजे पाँव बिन चलवेको आधीन॥१॥  
हों जाने था एक ही उपादान सों काज।  
थकै सहाई पौन बिन पानी मांहे जहाज॥२॥  
ज्ञान नैन किरिया चरण दोऊ शिवमग धार।  
उपादान निश्चय जहाँ तहाँ निमित्त व्यवहार॥३॥  
उपादान निजगुण जहाँ तहाँ निमित्त पर होय।  
भेदज्ञान परमाण विधि विरला बूझे कोय॥४॥  
उपादान बल जहाँ तहाँ नहिं निमित्तको दाव।  
एक चक्र सों रथ चले रविको यहै स्वभाव॥५॥  
सधै वस्तु असहाय जहाँ तहाँ निमित्त है कौन।  
ज्यों जहाज परवाह में तिरै सहज बिन पौन॥६॥  
उपादान विधि निरवचन है निमित्त उपदेश।  
वसे जु जैसे देशमें धरे सु तैसे भेष॥७॥



ॐ नमः सिद्धेभ्यः

विद्वद्भ्यं पण्डित बनारसीदासजी कृत

उपादान-निमित्त दोहा

पर किये गये

### परम पूज्य श्री कानजीस्वामीके प्रवचन

वस्तुका स्वभाव स्वतंत्र है, प्रत्येक वस्तु अपने स्वतंत्र स्वभावसे ही अपना कार्य कर रही है। उपादान और निमित्त दोनों स्वतंत्र भिन्न वस्तुयें हैं। जब उपादान अपना कार्य करता है तब निमित्त मात्र होता है। इतना ही उपादान-निमित्तका मेल है, उसकी जगह किंचित् मात्र भी कर्त्ता-कर्म सम्बन्ध मानना सो अज्ञान है। पण्डित बनारसीदासजीने अपने दोहोंमें संक्षेपमें उपादान-निमित्तका स्वरूप बहुत ही सुन्दर रूपमें बताया है।

शिष्यका प्रश्न

गुरु उपदेश निमित्त बिन उपादान बलहीन।

ज्यों नर दूजे पाँव बिन चलवेको आधीन॥१॥

हों जाने था एक ही उपादान सों काज।

थकै सहाई पौन बिन पानी मांहि जहाज॥२॥

**अर्थ :**—जैसे आदमी दूसरे पैरके बिना नहीं चल सकता उसी प्रकार उपादान (आत्मा स्वयं) भी सद्गुरुके उपदेशके निमित्तके बिना असमर्थ है। जो यह मानते हैं कि मात्र उपादानसे ही काम हो जाता है वे ठीक नहीं, (जैसे पानीमें पवनकी सहायताके बिना जहाज थक जाता है उसी प्रकार निमित्तकी सहायताके बिना

उपादान अकेला कार्य नहीं कर सकता) इस प्रकार अज्ञानियोंकी मान्यता है जो कि ठीक नहीं है।

उपादान-निमित्तके स्वरूपकी जिज्ञासावाला शिष्य यह बात पूछता है, निमित्त और उपादानकी बातको कुछ ध्यानमें रखकर वह पूछता है कि उपादान क्या है और निमित्त क्या है ? किन्तु जिसे कुछ खबर ही न हो और जिसे जिज्ञासा ही न होती हो तो वह क्या पूछेगा ?

जिसने निमित्त-उपादानकी बात सुनी है, किन्तु अभी निर्णय नहीं किया ऐसा निमित्तका पक्षवाला आदमी पूछता है कि-बिना निमित्तके उपादान अपना कार्य करनेमें बलहीन है। यदि निमित्त हो तो उपादान काम कर सकता है, गुरु हो तो शिष्यको ज्ञान होता है, सूर्य हो तो कमल खिलता है, दो पैर हों तो आदमी चल सकता है; कहीं एक पैरसे नहीं चला जाता। देखिये अकेला एक पैर काम नहीं कर सकता। जब एक पैरको दूसरे पैरकी सहायका मिलती है तब चलनेका लाभ होता है, इसी प्रकार अकेला उपादान काम नहीं कर सकता, किन्तु जब उपादान और निमित्त दोनों एकत्रित होते हैं तब कार्य होता है। उपादानका अर्थ है आत्माकी शक्ति। जीवको सम्यग्दर्शन प्रगट करनेमें आत्माकी सच्ची समझ-स्वभावकी प्रतीतिका होना सो उपादान है और गुरुका उपदेश निमित्त है। जब उपादान स्वयं कार्यरूप परिणमन करता है तब जो बाह्य संयोग होता है वह निमित्त है, इसप्रकार उपादान-निमित्तकी व्यवस्था है।

अज्ञानियोंका यह तर्क है कि यदि अनुकूल निमित्त नहीं मिलता तो उपादानका काम नहीं बनता, और वे सत्सम्बन्धी दृष्टान्त भी देते हैं। यह दोहे पं. बनारसीदासजी द्वारा रचे गये हैं। उन

अज्ञानियोंकी ओरसे स्वयं प्रश्न उपस्थित करके उनका उत्तर दिया है। ज्ञानीजन जानते हैं कि अज्ञानियोंके क्या क्या तर्क हो सकते हैं। यह दोहे अत्यन्त उच्च कोटिके हैं। इनमें वस्तुस्वभावका बल बताया गया है।

अज्ञानी यह मानता है कि कोई निमित्त हो तो उपादानका काम होता है और ज्ञानी यह जानता है कि मात्र वस्तुके स्वभावसे ही कार्य होता है, उसमें निमित्तकी न तो कोई सहायता होती है और न कोई असर होता है, किन्तु उस समय जो बाह्य संयोग उपस्थित होते हैं उन्हींको निमित्त कह दिया जाता है, कार्य तो अकेला उपादान स्वयं ही करता है।

शिष्यका प्रश्न—आप कहते हैं कि मात्र उपादानसे ही काम होता है, यदि यह सच हो तो बिना हवा जहाज क्यों नहीं चलता ? उपादानके होते हुये भी हवाके निमित्तके बिना क्या जहाज चल सकता है ? बिना हवाके अच्छेसे अच्छा जहाज भी रुककर रह जाता है, इसी प्रकार सद्गुरुके उपदेशके बिना आत्मरूपी जहाज मोक्षमार्गकी ओर नहीं चल सकता। सद्गुरुका निमित्त हो तो आत्मरूपी जहाज सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी मुक्तिके मार्ग पर चल सकता है। इससे सिद्ध हुआ कि निमित्त हो तो उपादान काम करता है और निमित्त न हो तो उपादान बलहीन हो जाता है, अकेला आत्मा क्या कर सकता है ? यदि सद्गुरु हों तो मार्ग बतायें और आत्मा उस मार्ग पर चले। इस प्रकार निमित्त-उपादान एकत्रित हों तो आत्मा मोक्षमार्गमें चलता है।

निमित्तके उपरोक्त तर्कका उपादानकी ओरसे उत्तर देते हुये कहा है कि—

ज्ञान नैन किरिया चरण दोऊ शिवमग धार।

उपादान निश्चय जहाँ तहाँ निमित्त व्यवहार॥३॥

अर्थ :—सम्यग्दर्शनपूर्वक ज्ञानरूपी जो आँखें और वह ज्ञानमें स्थिरतास्वरूप सम्यक्चारित्रिकी क्रियारूपी जो चरण वह दोनों मोक्षमार्गको धारण करते हैं। जहाँ ऐसा निश्चय उपादान (मोक्षमार्ग) होता है वहाँ निमित्तरूप व्यवहार होता ही है।

सम्यग्दर्शनपूर्वक ज्ञान और ज्ञानमें स्थिरतारूप सम्यग्चारित्रिकी क्रिया वह दोनों मोक्षमार्गमें को धारण करते हैं। जहाँ उपादानरूप निश्चय होता है वहाँ निमित्तरूप व्यवहार होता ही है। अज्ञानी मानते हैं कि सद्गुरुका निमित्त और आत्माका उपादान मिलकर मोक्षमार्ग है, किन्तु ज्ञानी जानते हैं कि 'ज्ञान नयन किरिया चरण' अर्थात् ज्ञानरूपी नेत्र मोक्षमार्गको दिखाते हैं और चारित्र उसमें स्थिर होता है। इस प्रकार ज्ञान और चारित्र दोनों मिलकर मोक्षमार्ग है (ज्ञानके कहने पर उसमें श्रद्धा भी आ जाती है) जहाँ ऐसा निश्चय मोक्षमार्ग होता है वहाँ सद्गुरुका निमित्तरूप व्यवहार होता ही है, किन्तु ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग तो अकेले उपादानसे ही होता है।

आत्मा देहादि पर संयोगोंसे भिन्न है, दया इत्यादिकी शुभ भावना और हिंसा इत्यादिकी अशुभ भावना दोनों विकार हैं, आत्माके स्वरूप नहीं हैं। इसप्रकार परसे और विकारसे भिन्न आत्माके शुद्ध स्वरूपकी श्रद्धापूर्वक ज्ञान आत्माकी आँख है और पुण्य-पापके विकारसे रहित स्थिरतारूप क्रिया चारित्र है; इसप्रकार ज्ञान और चारित्र दोनों मोक्षके उपाय हैं। पहले ज्ञानरूपी आँखोंसे मोक्षके मार्गको जाने बिना वह मोक्षमार्गमें कैसे चलेगा? आत्माके स्वभावको जाने बिना पुण्यमें मोक्षमार्ग मानकर अज्ञान भावसे संसारमें

ही चक्कर लगायेगा। पहले शुद्धात्माके ज्ञानपूर्वक मोक्षमार्गको जाने और फिर उसमें स्थिर हो तो मोक्ष प्राप्त होता है। जीव अपने उपादानसे जब ऐसे मोक्षमार्गको प्रगट करता है तब सद्गुरु निमित्तरूप होते हैं—यह व्यवहार है।

उपादान अर्थात् निश्चय और निमित्त अर्थात् व्यवहार। उपादान तो स्व है और निमित्त पर है अर्थात् स्व निश्चय है और पर व्यवहार है, जो द्रव्य स्वयं कार्यरूप होता है वह द्रव्य कार्यमें निश्चय है और जब स्वयं कार्यरूप हो रहा हो तब अनुकूल परवस्तुके ऊपर 'निमित्त'का आरोप करना सो व्यवहार है। इसप्रकार निमित्त केवल उपचार मात्र है। इस सम्बन्धमें श्रीपूज्यपादस्वामीने कहा है कि—

नाज्ञो विज्ञत्वमायाति विज्ञोनाज्ञत्वमृच्छति।

निमित्तमात्रमन्यस्तु गतेर्धर्मास्तिकायवत् ॥३५॥

अर्थ :—अज्ञानी जीव (परसे) ज्ञानी नहीं हो सकता, इसी प्रकार ज्ञानी जीव (परके द्वारा) अज्ञानी नहीं हो सकता, दूसरे तो निमित्त मात्र होते हैं। जैसे अपनी शक्तिसे चलते हुये जीव और पुद्गलोंके लिये धर्मास्तिकाय निमित्तमात्र है उसीप्रकार मनुष्य स्वयं ज्ञानी अथवा अज्ञानी होता है, उसमें गुरु इत्यादि निमित्तमात्र हैं।

'धर्मास्तिकायवत्' अर्थात् सभी निमित्त धर्मास्तिकायके समान हैं, इस एक वाक्यमें ही निमित्तकी उपादानमें सर्वदा अकिंचित्करता बता दी गई है।

जैसे धर्मास्तिकाय सदा सर्वत्र विद्यमान है, किन्तु जो पदार्थ स्वयं गतिरूप परिणमन करते हैं उनके लिये धर्मास्तिकाय पर निमित्तका आरोप आता है और जो पदार्थ स्थितिरूप होते हैं उनके लिये धर्मास्तिकाय पर निमित्तका आरोप नहीं होता। इसप्रकार यदि

पदार्थ गतिरूप परिणमन करे तो धर्मास्तिकायको निमित्त कहा जा सकता है और यदि गति न करे तो निमित्त नहीं कहा जाता, धर्मास्तिकाय तो दोनोंमें मौजूद है वह कहीं पदार्थोंको चलाता नहीं है, किन्तु यदि पदार्थ गति करता है तो मात्र आरोपसे उसे निमित्त कहा जाता है। इसी प्रकार समस्त निमित्तोंको धर्मास्तिकायकी तरह ही समझना चाहिये।

कमल खिलता है उसमें सूर्य निमित्त है अर्थात् यदि कमल स्वयं खिले तो सूर्य पर निमित्तारोप आता है और यदि कमल न खिले तो सूर्य पर निमित्तारोप नहीं आता। कमलके कार्यमें सूर्यने कुछ भी नहीं किया वह तो धर्मास्तिकायकी तरह मात्र उपस्थित होता है।

यथार्थ ज्ञानमें गुरुका निमित्त है अर्थात् यदि जीव स्वयं यथार्थ वस्तुको समझ ले तो गुरु पर निमित्तका आरोप आता है और यदि जीव स्वयं यथार्थको नहीं समझता तो गुरुको निमित्त नहीं कहा जाता। गुरु किसीके ज्ञानमें कुछ करते नहीं हैं, वह तो मात्र धर्मास्तिकायकी तरह उपस्थित रहते हैं।

मिट्टीसे घड़ा बनता है, उसमें कुम्हार निमित्त है अर्थात् मिट्टी स्वयं घड़ेके रूपमें परिणमित हो तो कुम्हारमें निमित्तका आरोप आता है और यदि मिट्टी घड़ेके रूपमें परिणमित नहीं होती तो कुम्हारको निमित्त नहीं कहा जाता। मिट्टीके कार्यमें कुम्हार कुछ नहीं करता, कुम्हार तो धर्मास्तिकायकी तरह उपस्थित मात्र है। इसप्रकार जहाँ-जहाँ पर वस्तुको निमित्तकारण कहा जाता है वहाँ सर्वत्र “धर्मास्तिकायवत्” समझना चाहिये।

पदार्थका स्वयं कार्यरूपमें परिणमन होना सो निश्चय है और



अन्य पदार्थमें कारणपनेका आरोप करके उसे निमित्त कहना सो व्यवहार है। जहाँ निश्चय होता है वहाँ व्यवहार होता ही है। अर्थात् जहाँ उपादान स्वयं कार्यरूपमें परिणमित होता है वहाँ निमित्तरूप परवस्तुकी उपस्थिति अवश्य होती है। उपादानने अपनी शक्तिसे कार्य किया है—ऐसा ज्ञान करना सो निश्चयनय है और उस समय उपस्थित रहनेवाली परवस्तुका ज्ञान करना सो व्यवहारनय है।३।

अर्थ :—सम्यग्दर्शन-ज्ञानरूप नेत्र और ज्ञानमें चरण अर्थात् लीनतारूप क्रिया दोनों मिलकर मोक्षमार्ग जानो। उपादानरूप निश्चय कारण जहाँ हो वहाँ निमित्तरूप व्यवहार कारण होता ही है निमित्तकी राह देखकर रुकना पड़े ऐसी पराधीनता नहीं है।३।

(१) उपादान वह निश्चय अर्थात् सच्चा कारण है, निमित्त तो मात्र व्यवहार अर्थात् उपचारकारण है, सच्चा कारण नहीं है, इसलिये तो उसे अकारणवत् कहा है। और उसे उपचार (-आरोप) कारण क्यों कहा कि वह उपादानका कुछ कार्य करता-करता नहीं, तो भी कार्यके समय उसकी उपस्थितिके कारण उसे उपचारमात्र कारण कहा है।

(२) सम्यग्ज्ञान और ज्ञानमें लीनताको मोक्षमार्ग जानों ऐसा कहा उसीमें शरीराश्रित उपदेश, उपवासादिक क्रिया और शुभरागरूप व्यवहारको मोक्षमार्ग न जानो वह बात आ जाती है।

प्रथम प्रश्नका समाधान—

उपादान निजगुण जहाँ तहाँ निमित्त पर होय।

भेदज्ञान परमाणु विधि विरला बूझे कोय॥४॥

अर्थ :—जहाँ निजशक्तिरूप उपादान तैयार हो वहाँ परनिमित्त

होते ही हैं, ऐसी भेदज्ञान प्रमाणकी विधि (—व्यवस्था) है, यह सिद्धान्त कोई विरला ही समझता है।४।

जहाँ उपादानकी योग्यता हो वहाँ नियमसे निमित्त होता है, निमित्तकी राह देखना पड़े ऐसा नहीं है; और निमित्तको हम जुटा सकते—ऐसा भी नहीं है। निमित्तकी राह देखनी पड़ती है या उसे मैं ला सकता हूँ, ऐसी मान्यता परपदार्थमें अभेदबुद्धि अर्थात् अज्ञान सूचक है। निमित्त और उपादान दोनों असहायरूप हैं तो मर्यादा है।४।

उपादान अपनी शक्तिसे कार्य करता है तब वहाँ निमित्त होता है, किन्तु वह उपादानमें कुछ भी नहीं कर सकता यह भेदविज्ञानकी बात है। स्व और पर द्रव्य भिन्न—भिन्न हैं, एकका दूसरेमें नास्तित्व है तब फिर वह क्या कर सकता है? यदि खरगोशके सींग किसी पर असर कर सकते हों तो निमित्तका असर भी दूसरे पर हो सकता है, किन्तु जैसे खरगोशके सींगका अभाव होनेसे उनका किसी पर असर मानना झूठ है उसी प्रकार निमित्तका परद्रव्यमें अभाव होनेसे निमित्तका कोई असर परद्रव्यमें मानना मिथ्यात्व है। इसप्रकार वस्तुस्वभावका भेदज्ञान किसी विरले सत्य पुरुषार्थी जीवके ही होता है। उपादान—निमित्त की स्वतंत्रताको ज्ञानी ही जानते हैं। ज्ञानीजन वस्तुस्वभावको देखते हैं, इसलिये वे जानते हैं कि प्रत्येक वस्तुकी पर्याय उस वस्तुके अपने स्वभावसे होती है। वस्तुस्वभावमें ही अपना कार्य करनेकी शक्ति है, उसे पर वस्तुके निमित्तकी आवश्यकता नहीं होती। अज्ञानी वस्तुस्वभावको नहीं जानते, इसलिये वे संयोगको ही देखते हैं और वस्तुका कार्य स्वतंत्र नहीं मानकर उसे संयोगाधीन—निमित्ताधीन मानते हैं। इसलिये उनके संयोगोंकी एकत्वबुद्धि दूर नहीं होती और स्व-परका भेदज्ञान नहीं होता।

यहाँ पर उपादान और निमित्तकी स्वतंत्रता बतलाकर भेदज्ञानका उपाय बताते हैं। समस्त जगत्के बहुतसे जीव उपादान-निमित्तके स्वरूपको समझे बिना उसकी खीचड़ी पकाया करते हैं। निमित्तमें कोई विशेषता है कभी-कभी निमित्तका असर होता है, कभी-कभी निमित्तकी मुख्यतासे कार्य है, इसप्रकारकी तमाम मान्यतायें अज्ञान मूलक हैं।४।

उपादान बल जहाँ तहाँ नहीं निमित्तको दाव।

एक चक्रसों रथ चलै रविको यहै स्वभाव॥५॥

अर्थ :—जहाँ देखो वहाँ सदा उपादानका ही बल है निमित्त होता है, परन्तु निमित्तका कुछ भी (-बल) नहीं है; जैसे एक चक्रसे सूर्यका रथ चलता है इसप्रकार प्रत्येक कार्य उपादानकी योग्यता (सामर्थ्य) से ही होता है, निमित्त उपादानमें कुछ भी करता नहीं।

जहाँ प्रत्येक वस्तु अपने अपने स्वभावसे ही कार्य करती है। वहाँ उसके स्वभावमें पर वस्तु क्या कर सकती है? कोई वस्तु अन्य वस्तुके भावमें परिणमन नहीं करती। उपादान स्वयं अपने भावमें परिणमन करता है और निमित्त निमित्तके अपने भावमें परिणमन करता है। अपनी पर्यायका कार्य करनेमें प्रत्येक वस्तुका उपादान स्वयं ही बलवान है उसमें निमित्तका कोई कार्य नहीं इसमें दृष्टान्त भी प्राकृतिक वस्तुका दिया गया। सूर्यके रथको एक ही चक्र होता है, एक चक्रसे ही चलनेका सूर्यका स्वभाव है; उसी प्रकार एक स्ववस्तुसे ही कार्य करनेका वस्तुका स्वभाव है। अपने उपयोगको स्वभावकी ओर बदलनेमें जीव स्वयं स्वतंत्र है। इसलिये हे निमित्तके पक्षकार ! तुम कहते हो कि 'निमित्त हो तो कार्य हो, और जैसा निमित्त मिलता है उसीके अनुसार उपादानकी पर्याय होती है' यह

बात असत्य है। स्वभावमें पर निमित्तका कोई कार्य है ही नहीं। यदि वस्तुकी कोई भी पर्याय निमित्तके कारण होती हो तो क्या उस वस्तुमें उस पर्याय होनेकी शक्ति नहीं थी ? अनादि अनन्त कालकी समस्त पर्यायोंका सामर्थ्य वस्तुमें विद्यमान है और जबकि वस्तुमें ही अनादि अनन्त पर्यायोंकी शक्ति है तब उसमें दूसरेने क्या कर दिया ? अनादि अनन्त पर्यायोंमेंसे यदि एक भी पर्याय परके कारण अथवा परकी मुख्यताको लेकर होती है वह माना जाय तो कहना होगा कि ऐसा माननेवालेने वस्तुको ही स्वीकार नहीं किया।

भला निमित्तने किया कैसे ? क्या वस्तुमें वह पर्याय नहीं थी और निमित्तने बाहरसे लाकर उसे दे दिया। जिस वस्तुमें जो शक्ति न हो वह दूसरेसे नहीं दी जा सकती और जो शक्ति वस्तुमें होती है उसे दूसरेकी सहायताकी आवश्यकता नहीं होती, ऐसे स्वतंत्र वस्तुस्वभावको स्वीकार किये बिना स्वतंत्र दशा (सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र) कदापि प्रगट नहीं होगी।

पहले एक तर्कमें कहा था कि क्या आदमी दो पैरके बिना चल सकता है ? हाँ, जिसमें चलनेकी उस प्रकारकी शक्ति होती है वह एक पैरसे भी चल सकता है। ९६ अन्तर्दीपके मनुष्यके एक पैर होता है और वे एक ही पैरसे चलते हैं, इसीप्रकार आत्माके अन्तरस्वभावकी शक्तिसे निर्मलदशा प्रगट होती है। निर्मलदशाके प्रगट करनेमें निमित्तका कोई कार्य नहीं है, इतना ही नहीं किन्तु निमित्तके प्रति लक्ष्य भी नहीं होता। निमित्तके लक्ष्यको छोड़कर मात्र स्वभावके लक्ष्यसे निर्मलदशा प्रगट होती है।

जड़के सुख-दुःख नहीं होता। यहाँ तो जीवका प्रयोजन है। जीवमें 'उपयोग' है उसीसे वह अकेला अपने उपयोगको स्वकी ओर

बदल सकता है। निमित्तकी ओरसे उपयोगको हटाकर स्वभावकी ओर उपयोगको करनेके लिये उपयोग स्वयं अपनेसे ही बदल सकता है। स्वद्रव्य और अनेक प्रकारके परद्रव्य एक साथ उपस्थित हैं, उनमें अपने उपयोगको स्वयं जिस ओर ले जाना चाहे उस ओर ले जा सकता है। पर द्रव्योंके होने पर भी उन सबका लक्ष्य छोड़कर उपयोगको स्वद्रव्यकी ओर ला सकता है, इस न्यायमें उपयोगकी स्वतंत्रता बताई है और निमित्ताधीन दृष्टिको उड़ा दिया है।५।

वस्तुका स्वभाव ही ऐसा है कि एक-दूसरेका कुछ नहीं कर सकता, इसीको आगे कहते हैं :—

दूसरे प्रश्नका समाधान :—

सधै वस्तु असहाय जहाँ तहाँ निमित्त है कौन ?

ज्यों जहाज परवाहमें तिरै सहज बिन पौन॥६॥

अर्थ :—प्रत्येक वस्तु स्वतंत्रतासे अपनी अवस्थाको (—कार्यको) प्राप्त करती है वहाँ निमित्त कौन ? जैसे जहाज प्रवाहमें सहज ही पवन बिना ही तैरता है।

जीव और पुद्गल द्रव्य शुद्ध या अशुद्ध अवस्थामें स्वतंत्रपनेसे ही अपने परिणामको करते हैं; अज्ञानी जीव भी स्वतंत्रपनेसे निमित्ताधीन परिणामन करते हैं, कोई निमित्त उसे अधीन नहीं बना सकता।६।

इस दोहेमें वस्तुस्वभावको विशेष स्पष्टतासे बताया है। 'सबै वस्तु असहाय' अर्थात् सभी वस्तुएँ स्वतंत्र हैं एक वस्तुकी दूसरीमें नास्ति है तब फिर उसमें निमित्त कौन हो सकता है ? एक वस्तुमें दूसरी वस्तुको निमित्त कहना व्यवहार है—उपचार है। वस्तुस्वभाव

परसे भिन्न स्वतः परिपूर्ण है, वह स्वभावकी परकी अपेक्षा नहीं रखता और उस स्वभावका साधन भी असहाय है। निमित्त-निमित्तमें भले रहे, परन्तु उपादानके कार्यमें निमित्त कौन है ? वस्तुके अनंतगुणोंमें एक भी गुण दूसरे गुणसे असहाय-स्वतंत्र है, तब फिर एक वस्तुको दूसरी भिन्न वस्तुके साथ तो कोई सम्बन्ध नहीं है। यहाँ स्वभावदृष्टिके बलसे कहते हैं कि एक वस्तुमें दूसरी वस्तुका निमित्त भी कैसा ? निमित्त होता है उसका ज्ञान गौणरूपमें है।

जैसे वायुकी मौजूदगीके बिना जहाज पानीके प्रवाहमें चलता है उसी प्रकार आत्मा पर निमित्तके लक्षके बिना और पुण्य-पाप विकारसे रहित उपादानके लक्षसे स्वभावमें स्थिर हो गया है, उसमें निमित्त कौन है ? बाह्यमें निमित्त है या नहीं इसका लक्ष नहीं है और अन्तरमें शुक्लध्यानकी श्रेणीमें चढ़कर केवलज्ञान प्राप्त करता है, एक क्षणमें अनन्त पुरुषार्थ प्रगट करके केवलज्ञान प्रगट करता है ऐसा असहाय वस्तुस्वभाव है। ऐसे आत्मस्वभावकी प्रतीति करके उसकी रमणतामें स्थिर हो जाने पर बाह्य निमित्तका लक्ष नहीं रहता। विकार किसी निमित्तकी प्रेरणासे नहीं होता; उपादान स्वयं अपनी पर्यायकी योग्यतासे विकार करता है तो होता है। सारी वस्तु असहाय है और प्रत्येक पर्याय भी असहाय है।

ओहो ! जिसने ऐसा स्वतंत्र वस्तुस्वभाव प्रतीतिमें लिया है वह अपनी निर्मलताके लिये किसका मुँह देखेगा ? ऐसी प्रतीति होने पर वह परमुखापेक्षी नहीं रहता, अर्थात् मात्र स्व-स्वभावकी दृष्टि और एकाग्रताके बलसे विकारका क्षय होकर अल्पकालमें केवलज्ञान प्रगट होता है।६।

कोई पूछता है कि यदि निमित्त कुछ भी नहीं करता और

निमित्त आरोप मात्र है तो फिर शास्त्रोंमें जो बारम्बार निमित्तसे उपदेश पाया जाता है उसका क्या कारण ? उसका समाधान करते हुये इस अन्तिम दोहेमें कहते हैं कि—

उपादान विधि निरवचन है निमित्त उपदेश।

वसे जु जैसे देशमें धरे सु तैसे भेष॥७॥

अर्थ :—उपादानका कथन एक “योग्यता” शब्द द्वारा ही होता है; उपादान अपनी योग्यतासे अनेक प्रकार परिणमन करता है तब उपस्थित निमित्त पर भिन्न-भिन्न कारणपनेका आरोप (—भेष) आता है, इससे निमित्त द्वारा यह कार्य हुआ ऐसा व्यवहारसे कहा जाता है।

उपादान जब जैसे कार्यको करता है तब वैसे कारणपनेका आरोप (—भेष) निमित्तपर आता है, जैसे—कोई वज्रकायवान मनुष्य नरकगति योग्य मलिन भाव करता है तो वज्रकाय पर नरकके कारणपनेका आरोप आता है, और यदि जीव मोक्ष योग्य निर्मलभाव करता है तो उसी निमित्त पर मोक्षकारणपनेका आरोप आता है। इसप्रकार उपादानके कार्यानुसार निमित्तमें कारणपनेका भिन्न-भिन्न आरोप दिया जाता है। इससे ऐसा सिद्ध होता है कि निमित्तसे कार्य नहीं होता, परन्तु कथन होता है। अतः उपादान सच्चा कारण है, और निमित्त आरोपित कारण है।

प्रत्येक समयका उपादान स्वतंत्र होनेसे वाणीके द्वारा नहीं कहा जा सकता। कथनमें भेद आये बिना नहीं रहता। कथनमें तो निमित्तका ज्ञान करानेके लिये निमित्तके द्वारा कथन करके समझाया जाता है, परन्तु जो निमित्तके ही कथनके पीछे लगे रहते हैं और वास्तविक आशयको नहीं पकड़ते, उनका लक्ष्य निमित्त पर ही बना

रहता है। निमित्तके कथनका अर्थ शब्दानुसार नहीं होता, किन्तु उपादानके भावको ही मुख्य समझकर उसका यथार्थ अर्थ समझना चाहिये।

शास्त्रोंमें कर्मोंका जो वर्णन है वह भी निमित्त मात्र दिखानेके लिये व्यवहारसे है अर्थात् आत्माके अनेक प्रकारके भावोंको पहचाननेके लिये कर्मोंके निमित्तसे कथन किया है। वहाँ आत्माके भावोंको पहचाननेका ही प्रयोजन है, किन्तु उसकी जगह अज्ञानीका लक्ष कर्मों पर ही रहता है। निमित्तकी मुख्यतासे कथन होता है, निमित्तकी मुख्यतासे कार्य कभी नहीं होता; जैसा काम किया उस प्रकारमें निमित्तसे वस्तुका ज्ञान करानेके लिये उसे निमित्त कहा है, पश्चात् छठवें दोहेमें पं० बनारसीदासजीने भार देकर कहा है कि अरे ! असहाय वस्तुस्वभावमें निमित्त है कौन ?

जैसे एक आदमी अनेक देशोंमें घूमता है और अनेक प्रकारके वेश धारण करता है, किन्तु अनेक प्रकारके वेष धारण करनेसे कहीं वह आदमी बदल नहीं जाता; आदमी तो वहका वही रहता है, इसी प्रकार आत्माको पहचाननेके लिये अनेक प्रकारके निमित्तसे कथन किया गया है, किन्तु आत्मा तो एक ही प्रकारका है। मात्र 'आत्मा आत्मा' कहनेसे आत्माको नहीं पहचाना जाता, इसलिये उपदेशमें भेदसे और निमित्तसे उसका ज्ञान कराया जाता है। उसका प्रयोजन मात्र आत्माके भावको बताना है, इसलिये निमित्तका और निमित्तकी अपेक्षासे होनेवाले भेदोंका लक्ष छोड़कर मात्र अभेद उपादानको लक्ष्यमें लेना ही सम्यग्दर्शन और मोक्षका उपाय है। इसलिये उपादान-निमित्तके स्वाधीन स्वरूपको पहचानकर उपादानस्वभावकी ओर ढलना चाहिये।



‘उपादान विधि निर्वचन, है निमित्त उपदेश’ में यह बात है कि :—प्रत्येक द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सत् होनेसे, उपादानकी कार्य करनेकी विधि—योग्यता एक ही प्रकार (-निर्वचन) है, प्रत्येक द्रव्यमें प्रत्येक समयकी स्वतंत्र योग्यतासे ही-अपनी योग्यतानुसार कार्य होता है, उसमें कुछ भी भेद-विवाद नहीं है और वहाँ कौन निमित्त है ऐसा ज्ञान करानेके लिये अनेक प्रकार निमित्तसे-उपचारसे उपदेश है, परन्तु किसी भी समय निमित्तकी मुख्यतासे कार्य नहीं होता यह सर्वत्र नियम है और उसे सम्यक्ज्ञानी ही जान सकते हैं।





उपादान - निमित्त  
विषय पर  
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके  
अन्य संकलित  
प्रवचन



## 卐 उपादान-निमित्तकी स्वतंत्रता 卐

### १. उपादान-निमित्त—

उपादान किसको कहते हैं ? और निमित्त किसको कहते हैं ? आत्माकी त्रैकालिक शक्तिको उपादान कहते हैं, तथा पर्यायकी वर्तमान शक्ति (योग्यता) को उपादान कहते हैं। जिस अवस्थामें कार्य होता है उस समयकी अवस्था (अवस्था परिणत द्रव्य) स्वयं उपादानकारण है; और उस समय कार्यके अनुकूल परद्रव्य निमित्त है। निमित्तके द्वारा उपादानमें कुछ नहीं होता। उपादान-निमित्तके संबंधमें प्रचलित अनेक प्रकारकी मिथ्या मान्यताएँ दूर हो जायें इस हेतु यह उपादान-निमित्त सिद्धान्तको अनेक प्रकारके द्रष्टांत द्वारा समझाया जाता है।

### २. गुरुके निमित्तसे ज्ञान नहीं होता।

आत्मामें जो ज्ञान होता है वह ज्ञान आत्माकी अपनी पर्याय-शक्ति से होता है अथवा शास्त्रके निमित्त से ? आत्माकी पर्यायकी योग्यता से ही ज्ञान होता है, निमित्तसे नहीं होता। जिस कालमें आत्माकी पर्यायमें पुरुषार्थ द्वारा सम्यग्ज्ञान प्रगट करनेकी योग्यता होती है और आत्मा सम्यग्ज्ञान प्रगट करे, उस समय गुरुको निमित्त कहा जाता है। लेकिन वास्तवमें गुरुके निमित्तसे ज्ञान नहीं हुआ है।

जब जीव सर्व प्रथम सम्यग्ज्ञानका पुरुषार्थ करता है उस समय गुरुकी वाणीका निमित्त होता है, परन्तु जब तक जीवका लक्ष वाणी पर होता है तब तक राग है और जीव जब वाणीका लक्ष छोड़कर स्वभावका निर्णय करता है, तब उस निर्णयमें गुरुको निमित्त कहा जाता है। तथा जीवको गुरुके बहुमानका विकल्प उठता है तब ऐसा

भी कहता है कि मुझे गुरुसे ज्ञान हुआ है।

३. 'गुरुसे ज्ञान हुआ' ऐसा कहना कपट नहीं अपितु व्यवहार है।

प्रश्न :—ज्ञान तो स्वयं से हुआ है—गुरुसे नहीं—ऐसा जानता है। तथापि गुरुसे ज्ञान हुआ ऐसा कहना वह कपट नहीं है क्या?

उत्तर :—व्यवहारमें ऐसा ही कहा जाता है, वह कपट नहीं पर वास्तविक सिद्धान्त है। गुरुके बहुमानका शुभ विकल्प उठा है, इसलिये उसका आरोप निमित्तको दिया जाता है।

प्रश्न :—गुरुके बहुमानका विकल्प उठा वह तो ठीक है परन्तु 'गुरुसे ज्ञान हुआ' ऐसा क्यों कहा जाता है ?

उत्तर :—जब गुरुके बहुमानका विकल्प उठता है उस समय निमित्तमें व्यवहारका आरोप करके ऐसा कहा जाता है, क्योंकि आरोपकी भाषा ऐसी ही होती है। वास्तवमें गुरुसे ज्ञान नहीं होता अथवा गुरुकी उपस्थिति न हो तो ज्ञान न हो ऐसा भी नहीं है। जब पुरुषार्थ द्वारा स्वयं ज्ञान प्रगट करता है उस समय गुरुको निमित्तके रूपमें कहा जाता है—यह सिद्धान्त है।

४. मिट्टीमें घड़ेरूप पर्याय होनेकी योग्यता त्रिकाल नहीं परन्तु एक समयकी ही है।

मिट्टीमेंसे घड़ा हुआ, वह उसकी वर्तमान पर्यायकी तद्समय की योग्यतासे ही हुआ है। कुंभकारके कारण नहीं। कोई ऐसा कहे कि मिट्टीमें घड़ेरूप परिणमित होनेकी योग्यता तो सदैव विद्यमान है परन्तु जब कुम्भकार उपस्थित हुआ तब घड़ेका निर्माण हुआ।—ऐसी मान्यता मिथ्या है। मिट्टीमें घड़ेरूप होनेकी योग्यता सदैव नहीं है परन्तु वर्तमान एक समयकी उसकी पर्यायकी योग्यता है, और

जिस समय पर्यायमें निर्माणरूप योग्यता होती है उसी समय घड़ेका निर्माण होता है। दूसरे पदार्थोंको मिट्टीसे भिन्न बताने के लिये 'मिट्टीमें घड़ेरूप होनेकी शक्ति है' ऐसा द्रव्यार्थिकनयसे कहा जाता है। सच्ची बात तो यह है कि जब घड़ेका निर्माण (बनता) होता है उसी समय उसमें घड़ेरूप होनेकी योग्यता होती है।

५. गुरुके द्वारा श्रद्धा होती नहीं।

आत्मा पुरुषार्थ से सच्ची श्रद्धा करता है वह उसकी वर्तमान योग्यता है और गुरु स्वयं अपने कारण उपस्थित होते हैं वह निमित्त है। जीवने श्रद्धा की अतः गुरुको आना पड़ा ऐसी बात नहीं है, तथा गुरुके आगमनमें श्रद्धा हुई ऐसा भी नहीं है। दोनों अपने अपने कारण से स्वतंत्र हैं। यदि ऐसा माना जाये कि गुरुके आगमनके कारण श्रद्धा उत्पन्न हुई तो गुरु कर्ता और शिष्य को श्रद्धा हुई वह उसका कार्य-ऐसा मानने पर दो द्रव्योंमें कर्ता-कर्मपना हो जाता है। अथवा श्रद्धा की तो गुरुजी आये ऐसा मानते हैं तो श्रद्धा कर्ता और गुरुजी आये वह उसका कार्य—अतः दो द्रव्योंसे कर्ता-कर्मपना संभवित हुआ। वास्तविकता यह है कि श्रद्धाकी पर्याय हुई वह श्रद्धा (आत्मा) द्वारा उत्पन्न हुई है। गुरुका आगमन वह गुरुकी पर्यायके कारणसे है—क्योंकि दोनों स्वतंत्र हैं।

६. शास्त्रसे ज्ञान नहीं होता।

शास्त्रके सन्मुख आनेसे ज्ञान होता है—ऐसी बात नहीं है। परन्तु जिस समय अपनी योग्यता होती है उस समय जीवको स्वयं अपनी शक्तिसे ज्ञान होता है, उस समय निमित्त रूपमें शास्त्र विद्यमान होता है। ज्ञान होनेके अवसर पर शास्त्रको विद्यमान होना आवश्यक नहीं है। शास्त्रसे ज्ञान होता है ऐसा भी नहीं है।

आत्माके सामान्य ज्ञानस्वभावका विशेषरूप परिणमन होनेपर ज्ञान प्रगट होता है। वह ज्ञान निमित्तके अवलम्बन रहित और रागके आश्रय रहित सामान्य ज्ञानस्वभावके आश्रयसे प्रगट होता है।

७. कुम्भारके द्वारा घड़ेका निर्माण नहीं होता।

मृत्तिकाकी जिस समयकी पर्यायमें घड़ेरूप परिणमनकी योग्यता होती है उसी समय वह स्वयं अपने उपादान द्वारा घड़ेरूप होती है, और उस समय कुम्भारकी उपस्थिति स्वयं अपने कारणसे होती है—उसे निमित्त कहा जाता है। घड़ेके निर्माण समय कुम्भकार उपस्थित न हो ऐसा होता नहीं परन्तु कुम्भकारके आनेसे मिट्टीकी घड़ेरूप अवस्था हुई—ऐसा भी नहीं है। घड़ेका निर्माण होना था उस समय कुम्भकार को आना पड़ा ऐसा भी नहीं। मिट्टीमें स्वतंत्र उस समयकी पर्यायकी योग्यतासे घड़ेका निर्माण हुआ है तथा उस समय कुम्भकार स्वयं अपनी पर्यायकी स्वतंत्रताकी योग्यता से विद्यमान है, तथापि कुम्भकारसे घड़ेका निर्माण नहीं हुआ, और कुम्भकारके निमित्तसे घड़ेकी उत्पत्ति नहीं हुई। (लेकिन कुम्भकारके योग-उपयोग पर ही निमित्तपने का आरोप आता है।)

८. एक पर्याय में दो प्रकार की योग्यता नहीं होती।

प्रश्न :—जब तक कुम्भकार का निमित्त न था तब तक मिट्टीमेंसे घड़ा क्यों नहीं हुआ ?

उत्तर :—यहाँ पर यह विशेषरूपसे सोचना है कि—जिस समय मिट्टीमेंसे घड़ेका निर्माण नहीं हुआ क्या उस समय उस मिट्टीमें घड़ेरूप होनेकी योग्यता है ? या घड़ेरूप परिणमनकी योग्यता ही नहीं है।

यदि ऐसा माना जाये कि-मिट्टीमें से घड़ेका निर्माण नहीं हुआ उस समय भी मिट्टीमें घड़ेरूप होनेकी योग्यता विद्यमान है। परन्तु निमित्त न होनेके कारण घड़ेका निर्माण नहीं हुआ। यह मान्यता ठीक नहीं हैं। क्योंकि जब मिट्टीमें घड़ेरूप अवस्था नहीं है उस समय भी उसमें पिण्डरूप अवस्था विद्यमान है। और उस समय उस रूप अवस्था होनेकी योग्यता भी स्वयं की है। जिस समय मिट्टीकी पर्यायमें पिण्डरूप अवस्था की योग्यता होती है उसी समय उसमें घड़ेरूप अवस्था होनेकी सामर्थ्य नहीं है-क्योंकि एक ही पर्याय में एक साथ दो प्रकारकी योग्यतायें नहीं हो सकती। यह सिद्धान्त अत्यंत महत्वपूर्ण है, उसे हर जगह लागू करना चाहिये।

अतः यह सिद्धान्तसे नक्की हुआ कि मिट्टीमें जब पिण्डरूप अवस्था होती है उसी समय उसमें घड़ेरूप परिणमन की योग्यता नहीं है। इस कारण मिट्टीमेंसे घड़ेका निर्माण हुआ; परन्तु यह बात सच्च नहीं है कि कुम्भार की मौजूदगी नहीं थी अतः घड़ेका निर्माण नहीं हुआ।

९. निमित्त न मिलाये तो कार्य नहीं हो-इस मान्यताका मिथ्यापना और उसके सम्बन्धमें पुत्र प्राप्तिका द्रष्टांत।

किसीको पुत्र प्राप्तिका योग था परन्तु विषयरूप निमित्त नहीं मिला अतः पुत्र प्राप्ति नहीं हुई-यह बात मिथ्या है। यदि पुत्र प्राप्तिका योग निश्चित है तो वह जिस समयमें होना है उसी समयमें और उस समय विषयादि निमित्त स्वयं उपस्थित होंगे। पुत्र अर्थात् एक आत्मा और अनन्त रजकण आनेवाले तो हैं तथापि पति-पत्नी ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं अतः पुत्र प्राप्तिका योग नहीं मिलता-ऐसी मान्यता झूठी है। पुत्रकी प्राप्ति होनी ही नहीं है अर्थात् वह जीव और अनन्त

रजकणोंकी क्षेत्रान्तररूप अवस्थाकी योग्यता ही वहाँ आनेकी नहीं थी अतः पुत्र प्राप्ति नहीं हुई। कोई ऐसा कहे कि पुत्र प्राप्तिकी योग्यता तो विद्यमान थी परन्तु निमित्तका संयोग नहीं मिला अतः प्राप्ति नहीं हुई और जब निमित्त मिला तब प्राप्ति हुई—उपरोक्त मान्यताका अर्थ यह हुआ कि निमित्तने कार्य किया; जबकि यह दो द्रव्योंकी एकत्वबुद्धि ही है। अथवा माता—पितारूप निमित्तका शरण नहीं मिला अतः पुत्र प्राप्ति नहीं हुई यह बात झूठी है। वास्तविकता यह है कि जब पुत्र प्राप्तिकी लायकात होती है उस समय विषयादि अशुभ विकल्प और शरीरकी भोगरूप क्रिया होती ही है—उसे निमित्त कहा जाता है। परन्तु पुत्र आगमनके कारण विकल्प या क्रिया नहीं है। तथा क्रिया और विकल्प हुआ इसके कारण पुत्र प्राप्ति हुई है—ऐसा भी नहीं है। विषयका अशुभ विकल्प आया अतः देह क्रिया हुई—ऐसा भी नहीं है। देहकी क्रिया होनेवाली थी अतः अशुभ विकल्प आया ऐसा भी नहीं है। प्रत्येक द्रव्यने स्वतंत्ररूपसे अपना कार्य किया है।

१०. जीव निमित्तोंको मिला सकता भी नहीं या दूर भी नहीं कर सकता; मात्र अपना लक्ष बदल सकता है।

जीव अपनेमें शुभभाव कर सकता है, और शुभभावकी क्रिया करने पर बाह्य शुभ निमित्तोंको प्राप्त कर सकता है अथवा अशुभ निमित्तको अलग कर सकता है—ऐसा नहीं है। जीव स्वयं अशुभ निमित्तों परसे लक्ष बदल कर जब शुभ निमित्तों पर लक्ष करता है, परन्तु निमित्तोंको जीव पास अथवा दूर नहीं कर सकता। किसी भाईने जिनमंदिर अथवा धर्मस्थानका शिलान्यास करनेका शुभभाव किया, जीवके भावानुसार बाह्यमें शिलान्यासकी क्रिया हुई—ऐसी बात



मिथ्या है। जीव केवल निमित्त उपर लक्ष कर सकता है या उसे छोड़ सकता है, परन्तु निमित्तरूप परपदार्थोंमें किसी भी प्रकारका परिवर्तन नहीं कर सकता है। ऐसा वस्तुका स्वभाव ही है; यह समझना ही भेदज्ञान है।

११. पंचमहाव्रतके कारण चारित्रदशा नहीं, और चारित्रके कारण वस्त्रका त्याग नहीं।

आत्माकी निर्मल वीतरागी चारित्रदशा प्रगट होती है उन्हें उस दशाके पूर्व चारित्र अंगीकार करनेका विकल्प उठता है। जो विकल्पकी उत्पत्ति हुई वह राग है, उसके कारण वीतराग भावरूप चारित्र प्रगट नहीं होता; चारित्र तो उस समयकी पर्यायके पुरुषार्थसे ही प्रगट हुआ है।

चारित्रदशामें शरीरकी नग्नदशा शरीरके कारण होती है। आत्माको चारित्र अंगीकार करनेका विकल्प उठा उसके कारण अथवा तो चारित्रदशा प्रगट की अतः शरीर परसे वस्त्र हट गये—ऐसा नहीं है परन्तु उस समय वस्त्रके परमाणुओंकी अवस्थामें क्षेत्रांतर होनेकी योग्यता विद्यमान थी अतः वस्त्रका त्याग हुआ है। आत्म-विकल्पके कारण वस्त्रका त्याग हो गया—ऐसा माननेमें आये तो विकल्प उसका (वस्त्र) कर्ता हुआ वस्त्र त्यागकी क्रिया उसका कर्म हुआ अर्थात् दो द्रव्य एक हो गये। उसीप्रकार वस्त्र त्यागकी क्रिया होनी थी अतः जीवको विकल्प आया ऐसा भी नहीं है। यदि ऐसा हो तो वस्त्र त्यागकी पर्याय कर्ता हुई और विकल्प उसका कर्म होगा अर्थात् दो द्रव्य एक हो गये यह दोष आयेगा। जब स्वभावके भानपूर्वक चारित्रका विकल्प उठता है और चारित्र ग्रहण करता है तब वस्त्र त्यागका प्रसंग सहजरूपसे होता है। अथवा “मैंने वस्त्रका

त्याग किया अथवा मेरा विकल्प निमित्त हुआ अतः वस्त्र त्याग हो गया” ऐसी मान्यता मिथ्यात्वरूप है। वीतरागचारित्र ग्रहणके पूर्ण पंचमहाव्रतादि विकल्प अवश्य आते हैं तथापि विकल्पके आश्रयमें चारित्र दशा प्रगट नहीं होती।

पंचमहाव्रतके विकल्पको चारित्रमें निमित्त कहा जाता है। विकल्प तो राग है उससे स्वभावकी ओर उन्मुख नहीं हुआ जाता परन्तु विकल्पका त्याग कर जब स्वभावकी ओर उन्मुख होता है तब उसके पूर्वके विकल्पको निमित्त कहा जाता है। पंचमहाव्रतके विकल्पको चारित्रमें कब निमित्त कहा जाता है? स्वभावमें एकाग्रताका पुरुषार्थ करके चारित्रदशा प्रगट करे तो उस विकल्पको चारित्रका निमित्त कहनेमें आता है। परंतु मैं पंचमहाव्रतके विकल्परूप निमित्त करूँ तब चारित्र प्रगट होगा—ऐसी मान्यता मिथ्यात्व है। उसी प्रकार व्यवहार दर्शन, व्यवहारका ज्ञान और व्यवहार चारित्रके परिणाम करूँ तो उससे निश्चय दर्शन—ज्ञान—चारित्र प्रगट होगा यह मान्यता भी मिथ्यात्व है।

## १२. समय समयकी स्वतंत्रता और भेदज्ञान

यह बात प्रत्येक वस्तुके स्वतंत्र स्वभावकी है। कोई स्वभावकी स्वतंत्रताको न समझे और ‘निमित्त से होता है’ ऐसा माने तो उसे सम्यक् श्रद्धा नहीं है, और सम्यक्ज्ञान कभी भी सम्यक् श्रद्धा के बिना नहीं होता। उसका शास्त्राभ्यास सम्यक् नहीं है, वृत्ति सच्ची नहीं है, और त्याग भी सच्चा नहीं है। प्रत्येक वस्तुकी समय—समयकी पर्याय स्वतंत्र है। प्रत्येक पदार्थमें उस कारणसे समय—समयकी (पदार्थकी) योग्यतासे कार्य होता है। पर्यायकी (पदार्थकी परिणामरूप) योग्यता वह उपादान कारण है। और उस समय उस

कार्यके लिये अनुकूलताका आरोप जिस वस्तु पर आता है—ऐसी योग्यतावाली दूसरी वस्तु योग्य क्षेत्रमें विद्यमान होती है उसे निमित्तकारण कहा जाता है, तथापि उसके कारण वस्तुमें कुछ कार्य नहीं होता ऐसी भिन्नताका यथार्थ ज्ञान ही भेदज्ञान है।

आत्मा तथा प्रत्येक परमाणुकी पर्याय (परिणमन परसे) स्वतंत्र है। जीवको पढ़नेका विकल्प आया इसलिये पुस्तक हाथमें आया ऐसा नहीं है। अथवा पुस्तक आने पर विकल्प उत्पन्न हुआ—ऐसा भी नहीं है। ज्ञान होना था अतः पढ़नेका विकल्प उत्पन्न हुआ ऐसा नहीं है और पढ़नेका विकल्प उत्पन्न हुआ अतः ज्ञान हुआ—ऐसा भी नहीं है। सच यह है कि प्रत्येक द्रव्यने स्वतंत्ररूपसे अपना—अपना कार्य किया। वीतरागी भेदज्ञान ऐसा कहता है कि—प्रत्येक समय प्रत्येक पर्याय अपने स्वतंत्र उपादानमें ही कार्य करती है। उपादानका कार्य निमित्तके आने पर होगा—ऐसा वस्तुस्वभाव नहीं है, परन्तु उपादान स्वतंत्र परिणमन करता है तब निमित्त अपनी योग्यतासे उपस्थित होता है।

१३. सूर्योदय हुआ अतः अंधकारका विलय हुआ—  
यह बात झूठी है।

छायामें से धूप होनेकी योग्यता परमाणुओंकी अवस्थामें जिस समय होती है उसी समय धूप प्रगट होती है और उस समय सूर्य आदि निमित्त रूपसे उपस्थित होते हैं। सूर्यके उदय होने पर छायामेंसे धूप हुई—यह बात झूठी है। तथा छायामेंसे धूपरूप अवस्था होनेकी थी अतः सूर्यका आगमन हुआ—यह बात भी झूठी है। वास्तवमें सूर्य अपनी योग्यतासे प्रगट हुई है और जो परमाणु छायामेंसे धूपरूप परिणमित हुए हैं वे भी उस समयकी योग्यता है।

### १४. केवलज्ञान और वज्रर्षभनाराच संहनन-दोनोंकी स्वतंत्रता

केवलज्ञान होनेमें वज्रर्षभनाराच संहनन निमित्त होता है। लेकिन उस समय वज्रर्षभनाराचसंहनन निमित्तरूपसे है अतः केवलज्ञान हुआ-ऐसा नहीं है और केवलज्ञान होना है इसलिये वज्रर्षभनाराचसंहननरूप परमाणुओंको परिणमित होना पड़ा-ऐसा भी नहीं है। जहाँ जीवकी केवलज्ञानके पुरुषार्थकी जागृति होती है वहाँ शरीरके परमाणुओंमें वज्रर्षभनाराचसंहननरूप अवस्था स्वयं उसकी योग्यतासे होती है। दोनोंकी योग्यता स्वतंत्र है, कोई एक दूसरेके कारण नहीं है। जीवको जब केवलज्ञान प्राप्तिकी योग्यता होती है वहाँ शरीरके परमाणुओंमें वज्रर्षभनाराचसंहननरूप अवस्थाकी योग्यता स्वयं होती है-ऐसा मेल स्वभावसे ही है, कोई एकदूसरेके कारण नहीं है।

### १५. पेट्रोल खतम हुआ अतः मोटर रुकी—

यह बात सत्य नहीं।

जब मोटर गतिमान हो उस समय पेट्रोलकी टंकी फट जाये और सारा पेट्रोल टंकीसे नीचे गिर जाये तब मोटर रुक जाती है। वहाँ पेट्रोल नीचे गिर गया अतः मोटर रुक गई-यह बात सच्ची नहीं है। जिस समय मोटरमें गतिरूप अवस्थाकी योग्यता होती है उसी समय वह गतिमान होती है, उस समय पेट्रोलकी अवस्था मोटरकी टंकीके क्षेत्रमें रहनेकी होती है परन्तु पेट्रोल है अतः मोटर चलती है-यह बात सच्ची नहीं है। मोटरका प्रत्येक परमाणु अपनी स्वयंकी स्वतंत्र क्रियावती शक्तिके कारण गमन करता है, और पेट्रोल निकल गया अतः मोटर रुक गई-ऐसा नहीं है। जिस क्षेत्रमें जिस समय मोटरकी रुकनेकी योग्यता होती है उसी समय मोटर रुकती है, और

पेट्रोलके परमाणु भी अपनी योग्यतासे पृथक् हो जाते हैं। पेट्रोल खतम हुआ अतः मोटर रुक गई—यह बात सत्य नहीं है।

१६. वाणी स्वयमेव (परमाणुओंसे) बोली जाती है,  
जीव उसका कर्ता नहीं।

बोलनेका विकल्प—राग हुआ इसलिये वाणी निकली—ऐसा नहीं है और वाणी निकलनी थी अतः विकल्प हुआ—ऐसा भी नहीं है। रागके कारण जो वाणी निकलती हो तो राग कर्ता और वाणी उसका कर्म हो जाये—ऐसा माननेमें आयेगा अथवा वाणी निकलनी थी इसलिये राग हुआ ऐसा होने पर वाणीके परमाणु कर्ता और राग उसका कर्म निश्चित होगा, लेकिन राग तो जीवकी पर्याय है, और वाणी परमाणुओंकी पर्याय है—उन्हें कर्ता—कर्मभाव नहीं है। जीवकी पर्यायमें योग्यता होने पर राग होता है, और वाणी वह परमाणुओंका उस समयका सहजरूप परिणमन है। परमाणु स्वतंत्ररूपसे वाणीरूप परिणमित होते हैं तब जीवको राग होता है उसे निमित्त कहा जाता है। केवली भगवानको वाणीका योग है परन्तु राग नहीं होता।

१७. शरीर स्वयं अपनी योग्यतासे चलता है,  
जीवकी इच्छासे नहीं।

जीव इच्छा करे और शरीर चले—ऐसा नहीं है। और शरीर चलता है अतः जीवको इच्छा होती है—ऐसा भी नहीं है। शरीरके परमाणुओंमें क्रियावर्तीशक्तिकी योग्यतासे गमन होता है, तब किसी जीवको अपनी अवस्थाकी योग्यतासे इच्छा होती है और किसी को नहीं। केवलीको शरीरकी गति होने पर भी इच्छा नहीं होती। शरीर इच्छाके निमित्तसे चलता है—यह बात झूठी है और गतिके निमित्तसे इच्छा हुई—यह बात भी झूठी है।

१८. विकल्प-निमित्त है इसलिये ध्यानमें एकाग्रता होती है—  
यह बात सच्ची नहीं है।

चैतन्यके ध्यानका विकल्प उत्पन्न हुआ (इच्छा हुई) वह राग है, उस विकल्परूपी निमित्तसे ध्यान होता है—ऐसा नहीं है; लेकिन जब ध्यान होना होता है उसके पहले विकल्प अवश्य होता है। तथापि विकल्पके कारण ध्यान नहीं है, तथा ध्यानके कारण विकल्प नहीं होता जिस पर्यायमें विकल्प उत्पन्न होता है वह उस पर्यायकी स्वतंत्र योग्यता है और जिस पर्यायमें ध्यान हुआ वह पर्यायमें अपनी स्वतंत्र योग्यतासे एकाग्र हुआ है।

१९. सम्यक् नियतवाद और उसका फल कहते हैं।

प्रश्न :—यह तो नियतवाद हो जाता है।

उत्तर :—यह सम्यक् नियतवाद है। मिथ्यानियतवाद नहीं है। सम्यक् नियतवादका अर्थ क्या है? जिस द्रव्यको जिस समय जिस क्षेत्रमें जिस निमित्तसे जैसा होना (परिणमन) है वैसा ही होगा, उसमें किंचित् भी बदलाव करनेमें कोई समर्थ नहीं है—ऐसा ज्ञानमें निर्णय करना वह सम्यक् नियतवाद है, और इस निर्णयमें स्वभावकी ओरका अनंत पुरुषार्थ आ जाता है। सब नियत है ऐसा जिस ज्ञानने निर्णय किया उस ज्ञानमें ऐसा निर्णय हो जाता है कि कोई किसी भी द्रव्यमें फेरफार करनेमें समर्थ नहीं है। इस प्रकार नियतका निर्णय करने पर “मैं परका कर सकता हूँ” ऐसे अहंकारका त्याग हो जाता है और ज्ञान परसे उदासीन होकर स्वभाव सन्मुख होता है। (उस ज्ञानके लिये) अपनी पर्याय भी क्रमबद्ध ही है, उस क्रमबद्धपनेका निर्णय करनेवाला ज्ञान, राग होने पर भी उसका त्याग कर द्रव्य स्वभावकी ओर ढलता है—किस प्रकार उन्मुख होता है? जब रागको (हेय)

जानता है तब ज्ञानमें ऐसा विचार करता है कि मेरी क्रमबद्ध पर्यायों में मेरे द्रव्यमेंसे प्रगट हुई हैं, त्रिकाली द्रव्य ही एक के बाद एक पर्यायको द्रवित करता है, वह (एक समयकी पर्याय जितना) त्रिकाली द्रव्यस्वभाव नहीं है अतः जो राग उत्पन्न होता है वह भी मेरे स्वभावका रूप नहीं और मैं उसका कर्ता नहीं हूँ (राग मेरा कर्तव्य नहीं है)। इस प्रकार सम्यक् नियतवादको अपने ज्ञानमें जिसने यथार्थरूपसे निर्णय किया उस जीवका ज्ञान अपने शुद्धस्वरूपकी ओर उन्मुख हुआ और स्वभावका श्रद्धा-ज्ञान हुआ, परसे उदास हुआ, रागका अकर्ता हुआ और परसे तथा विकारसे विमुख होकर ज्ञानको स्वभावमें स्थिर किया।—यह सम्यक् नियतवादका फल है; जिसमें ज्ञान और पुरुषार्थका स्वीकार है, परन्तु जो जीव मिथ्या नियतवादको मानता है अर्थात् जैसा होना होगा वैसा ही होगा—ऐसा मानता है। नियतवादके निर्णयमें स्वयंका ज्ञान और पुरुषार्थ आता है उसको मानता नहीं है, अर्थात् स्वभावकी ओर उन्मुख नहीं होता वह मिथ्यादृष्टि है, और यह मिथ्या नियतवाद वह गृहीत मिथ्यात्वका ही भेद है अतः वह गृहीत मिथ्यादृष्टि है।

२०. सम्यक् नियतवादमें पुरुषार्थ आदि पाँचों समवाय एक साथ होते हैं।

जो अज्ञानी यथार्थ निर्णय नहीं कर सकते उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि यह तो एकान्त नियतवाद हो जाता है। इस नियतवादका यथार्थ निर्णय करने पर अपने केवलज्ञानका निर्णय हो जाता है। गुरु, शिष्य, शास्त्र आदि समस्त पदार्थोंकी जिस समय जो योग्यता होती है वही पर्याय होती है ऐसा निश्चित हुआ। अर्थात् स्वयं उसका जाननेवाला रह गया; जाननेमें विकल्प नहीं है, अस्थिरताके कारण जो विकल्प उठता है उसका वह कर्ता नहीं होता। इस प्रकार क्रमसर

पर्याय श्रद्धा (श्रद्धा-ज्ञान) होने पर द्रव्यदृष्टि होनेसे कर्तापना मिट जाता है। ऐसे सम्यक् नियतवादकी श्रद्धामें ही पाँचों समवाय एक साथ होते हैं। स्वभावका ज्ञान और श्रद्धा की वह पुरुषार्थ है, उसी समय जो निर्मल पर्याय प्रगट होनी थी वही पर्याय प्रगट हुई है-वह नियत जिस समय जो पर्याय प्रगट हुई वह उसका स्वकाल और जो पर्याय प्रगट हुई वह स्वभावमें (शक्तिरूपसे) विद्यमान थी वही प्रगट हुई है, वह स्वभाव है, और उस समय पुद्गल कर्मोंका अभाव होता है वह अभावरूप निमित्त है और उस समय सद्गुरुश्रीकी उपस्थिति वह सद्भावरूप निमित्त है, प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है उसकी श्रद्धा करने पर अथवा सम्यक् नियतवादका निर्णय करने पर जीव संसारका जाननेवाला (साक्षी) हो जाता है। स्वभावका अनन्त पुरुषार्थ उसमें समाहित है, यह जैनदर्शनका मुख्य रहस्य है।

## २१. सम्यक् नियतवाद और मिथ्या नियतवाद।

श्री गोम्मटसार कर्मकांड गाथा ८८२में जिस जीवको गृहीत मिथ्यादृष्टि कहा है वह जीव तो नियतवादकी बात करता है और अपने ज्ञानमें ज्ञातादृष्टापनेका पुरुषार्थ नहीं करता है। यदि सम्यक् नियतवादका यथार्थ निर्णय करे तो स्वभावके ज्ञातादृष्टापनेका पुरुषार्थ उसमें आ जाता है। वास्तवमें वह जीव केवल पर लक्ष द्वारा ही नियतवाद मान रहा है। और नियतवादके निर्णयमें अपना जो ज्ञान और पुरुषार्थ कार्य करता है उसका स्वीकार (मानता) नहीं है अतः वह जीव मिथ्या नियतवादी है और उसे ही गृहीत मिथ्यात्वी कहा है। नियतवादका सम्यक् निर्णय वह तो गृहीत तथा अगृहीत मिथ्यात्वका नाश करता है। सम्यक् नियतवाद कहो कि स्वभाव कहो, इसमें द्रव्यकी प्रत्येक समयकी पर्यायकी स्वतंत्रता सिद्ध हो



जाती है। यदि जीव इस कथनको ठीक समझे तो उपादान-निमित्त सम्बन्धी सर्व भ्रमणा दूर हो जायेगी। क्योंकि वस्तुमें जिस समय जो पर्याय होनेवाली है वही होती है; कहते हैं कि अमुक निमित्त चाहिये अथवा अमुक निमित्तके बिना परिणमन नहीं होगा ऐसी बातोंका अवकाश ही कहाँ है? सम्यक् नियतवादका निर्णय करनेमें पुरुषार्थका समावेश होता है। सच्ची श्रद्धा-ज्ञानका कार्य करता है, स्वभावमें बुद्धि रुकती है। तथापि यह सब बातोंको जो जीव नहीं मानता और नियतवादकी बात करता है, उस जीवको एकान्ती गृहीत मिथ्यादृष्टि कहनेमें आता है। लेकिन जो जीव नियतवादको मानकर परके और रागके कर्तापनेका अभाव करता है तथा ज्ञातादृष्टापनेका साक्षीभाव प्रगट करता है वह जीव तो अनन्त पुरुषार्थी सम्यग्दृष्टि है।

२२. सम्यक् नियतवाद वह गृहीत मिथ्यात्व है

—ऐसा कौन कहता है।

सम्यक् नियतवाद वह गृहीत मिथ्यात्व नहीं है परन्तु वीतरागताका कारण है। जो ऐसे सम्यक् नियतवादको एकान्त मिथ्यात्व कहते हैं, वे इस बातको यथार्थ समझते नहीं हैं। परन्तु उन्होंने यह बात ठीकसे सुनी भी नहीं है। समस्त पदार्थोंमें जैसा होना है वैसा ही बनता है—ऐसा निर्णय करने पर, एक (वर्तमान) पर्याय उपरसे दृष्टि छूटकर त्रिकाल की ओर दृष्टि हुई, अर्थात् द्रव्यदृष्टि हो गई। उसने स्वको और परको वर्तमान पर्याय जितना ही माना है त्रैकालिक नहीं। आत्माका त्रैकालिक स्वभाव तो शुद्ध एवं रागरहित है अतः जीव रागका भी अकर्ता हुआ। और उसने पर पदार्थोंको त्रैकालिक माना है। अर्थात् उस पदार्थमें तीनोंकालकी पर्यायोंकी योग्यता विद्यमान और उसकी अवस्था स्वतंत्ररूपसे होती है। इस प्रकार सम्यक् नियतवादके

निर्णयमें स्वतंत्रताकी प्रतीत हो जाती है। अपनी अवस्थाका आधार द्रव्य है, वह द्रव्यस्वभाव शुद्ध ही है ऐसी प्रतीतिके कारण 'जो बनना है वही बनेगा'—ऐसा जो जीव मानता है उस जीवको वीतरागी दृष्टि है। यह नियतवाद तो वीतरागताका कारण है।

नियतवादके दो प्रकार हैं—एक सम्यक् नियतवाद और दूसरा मिथ्या नियतवाद। सम्यक् नियतवाद तो वीतरागताका कारण है, उसके स्वरूपका विवरण पहले किया है। कोई जीव 'जैसा बननेवाला है वैसा ही बनेगा' ऐसे नियतवादको मानता (मात्र बोलता) है, परन्तु परका लक्ष और पर्याय दृष्टिका त्यागकर स्वभावकी ओर उन्मुख नहीं होता नियतवाद जो निश्चित करनेवाला है ऐसे अपने ज्ञान और पुरुषार्थकी स्वतंत्रताको नहीं मानता, परका और विकारका कर्तापनेका अभिमान नहीं छोड़ता वह जीव पुरुषार्थको उड़ाकर स्वछंदमय प्रवर्तता है उसे गृहीत मिथ्यादृष्टि कहा है।

'जो होना है वही होगा' एसा मात्र यथार्थ नहीं है। 'होना हो वही होगा' ऐसा जो यथार्थ निर्णय तो जीवका ज्ञान परसे उदासीन होकर अपने स्वभावमें मिल जाता है। उस ज्ञानमें यथार्थ शान्ति प्रगट होती है। उस ज्ञानके साथ पुरुषार्थ, नियति, काल, स्वभाव और कर्म—यह पाँचों समवाय आ जाते हैं।

### २३. मिथ्या नियतवादका उपलक्षण।

प्रश्न :—मिथ्या नियतवादी जीव भी परवस्तु टूटने या नष्ट हो जाने पर ऐसा मानता है कि 'जैसा होना था वैसा हुआ' ऐसा मानकर शान्ति रखता है ? फिर उसको सम्यक् नियतवादका निर्णय क्यों नहीं ?

उत्तर :—जीव जो शान्ति रखता है वह मंदकषायरूप शान्ति

है वह यथार्थ शांति नहीं है। यदि उसे नियतवादका यथार्थ निर्णय हो तो, जिस प्रकार एक पदार्थका जैसा बनना है वैसा बना तथा समस्त पदार्थोंका जो होना है वही होगा—ऐसा निर्णय भी होता है। यदि ऐसा है तो फिर मैं परद्रव्योंको निमित्त होऊँ तो उसका कार्य होगा, निमित्त होगा तो कार्य होगा, किसी समय निमित्तका जोर चलता है—ऐसी समस्त मान्यताएँ मिट जाती हैं। 'सब नियत है' अर्थात् जिस कार्यमें जिस समय जिस निमित्तकी उपस्थिति होगी तो उस कार्यमें उस समय निमित्त स्वयमेव होता है। तो फिर निमित्तको मिलाना पड़ता है अथवा निमित्तकी उपेक्षा नहीं हो सकती अथवा निमित्त न हो तो कार्य नहीं होता ऐसी मान्यताओंका अवकाश ही कहाँ है? यदि सम्यक् नियतवादका निर्णय हो तो निमित्ताधीनदृष्टि मिट जाती है।

२४. मिथ्या नियतवादको 'गृहीत' मिथ्यात्व क्यों कहा?

प्रश्न :—मिथ्या नियतवादको गृहीत मिथ्यात्व क्यों कहा ?

उत्तर :—निमित्तसे धर्म होता है, रागमें धर्म होता है, शरीरादिका परिणमन आत्मा कर सकता है ऐसी मान्यतारूप अगृहीत मिथ्यात्व तो अनादिसे विद्यमान था। जन्म होने के बाद शास्त्र पढ़कर अथवा सुगुरु आदिके निमित्त द्वारा मिथ्या नियतवादका नया कदाग्रह ग्रहण किया अतः उसे गृहीत मिथ्यात्व कहा जाता है। पूर्वमें जिन्हें अनादिका गृहीत मिथ्यात्व होता है उन्हें ही गृहीत मिथ्यात्व होता है। जीव शाताशीलीपनेसे इन्द्रिय विषयोंको पोषनेके लिये 'जो होना है वही होगा' ऐसा कहकर स्वच्छंदताका मार्ग खोज निकालते हैं, उसका नाम गृहीत मिथ्यात्व है, और यह सम्यक् नियतवाद तो स्वभावभाव है। स्वतंत्रता है, वीतरागता है।

२५. सम्यक् नियतवादके निर्णयसे निमित्ताधीन दृष्टि और स्व परकी एकत्वबुद्धि मिटती है।

जिस वस्तुमें जिस समय जैसी पर्याय होनेवाली है और जिस निमित्तकी उपस्थिति रहनेवाली है, उस वस्तुमें उस वक्त ऐसी ही पर्याय हो और वही निमित्त होता है दूसरा नहीं होता। इस नियममें तीनोंकाल, तीनों लोकोमें फेरफार नहीं होता। यही नियतका यथार्थ निर्णय है। आत्मस्वभावके श्रद्धा-ज्ञान-चारित्रिका समावेश हो जाता है, और निमित्त ऊपरकी दृष्टि टल जाती है। मैं परका कर्ता नहीं हूँ, परन्तु परको निमित्त होऊँ ऐसी जिसकी मान्यता है वह मिथ्यादृष्टि है। स्वयं निमित्त है अतः परका कार्य होता है—ऐसा नहीं है, परन्तु सन्मुख वस्तुमें उसकी योग्यतासे ही कार्य होता है। उसमें अन्य जीवको निमित्त कहा जाता है। “मैं निमित्त होऊँ” इसका अर्थ यह हुआ कि वस्तुमें कार्य होना ही नहीं था परन्तु मैं निमित्त हुआ अतः कार्य हुआ—यह स्व-परकी एकत्वबुद्धि ही हुई।

२६. लकड़ी स्वयमेव ऊँची होती है हाथके निमित्तसे नहीं।

यह लकड़ी है उसमें स्वयं ऊँची होनेकी योग्यता (—सामर्थ) है, लेकिन जब मेरे हाथका स्पर्श होता है तभी वह ऊँची होती है अर्थात् मेरा हाथ जब उसे निमित्त होता है, तब लकड़ी ऊँची होती है—ऐसा माननेवाले जीवने वस्तुके पर्यायकी स्वतंत्रताको नहीं माना है अतः उसकी दृष्टि संयोगी दृष्टि है; वे वस्तुके स्वभावको ही नहीं मानते हैं। अतः मिथ्यादृष्टि है। लकड़ी ऊँची नहीं होती तब उसमें उपर होनेका सामर्थ्य नहीं है और जब उसमें योग्यता होती है तभी वह स्वयं ऊँची होती है; परन्तु हाथके कारणसे (निमित्तसे) वह ऊँची नहीं होती। लेकिन जब लकड़ी ऊँची होती है तब हाथ आदि

निमित्तरूप स्वयमेव उपस्थित होते हैं। ऐसा उपादान-निमित्तका मेल प्रकृति स्वभावसे ही होता है। निमित्तका ज्ञान करानेके लिये 'हाथके निमित्तसे ऊँचा हुआ—ऐसा कहना मात्र व्यवहार है।

२७. लोहचुंबक लोहेकी सुईको अपनी ओर खींचता नहीं है।

सुई लोहचुंबक पथ्थरकी ओर खींचती है, वहाँ लोहचुंबकने सुईको अपनी ओर खींचा नहीं परन्तु सुइने स्वयं अपनी योग्यतासे ही गमन किया है।

प्रश्न :—अगर सुई स्वयं अपनी योग्यतासे गमन करती है तो जब लोहचुंबक निकट नहीं होता तब गमन क्यों नहीं करती ? और जब पथ्थर समीपमें आया तब ही क्यों गमन हुआ ?

उत्तर :—प्रथम सुईमें गमन करनेकी योग्यता ही न थी अतः उस समय लोहचुंबक समीपमें (सुईको खींचने योग्य क्षेत्रमें) होता ही नहीं। और जब सुईमें क्षेत्रान्तर होनेकी योग्यता हुई तब लोहचुंबक और उसके बीचमें अंतराय नहीं होता।—ऐसा ही उपादान-निमित्तका सम्बन्ध है या दोनोंका मेल होता है। लेकिन एक दूसरेके कारण किसीकी क्रिया नहीं हुई। जब सुई को गमन करनेकी योग्यता हुई उस समय लोहचुंबक समीपमें आया—ऐसा नहीं है और लोहचुंबक समीपमें आया अतः सोई खींची—ऐसा भी नहीं हैं। जब सोईको क्षेत्रांतरकी योग्यता होती है उस समय लोहचुंबककी उस क्षेत्रमें उपस्थित रहनेकी योग्यता होती है—इसीका नाम निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

२८. निमित्तपनेकी योग्यता।

प्रश्न :—सुईमें लोहचुंबक पथ्थर कुछ करता ही नहीं फिर

उसे ही निमित्त क्यों कहा गया ? दूसरे सामान्य पथ्थरको निमित्त क्यों नहीं कहनेमें आया ? जिस प्रकार लोहचुंबक सोईका कुछ भी नहीं करता तथापि उसे निमित्त कहा जाता है। उसी प्रकार लोहचुंबककी तरह अन्य पथ्थर भी सोईमें कुछ भी नहीं करता तो उसे निमित्त क्यों नहीं कहा जाता ?

उत्तर :—उस समय उस कार्यमें लोहचुंबक पथ्थरमें ही निमित्तपनेकी योग्यता है, अर्थात् उपादानके कार्य हेतु अनुकूलताका आरोप दिया जा सके ऐसी योग्यता लोहचुंबक पथ्थरकी उस समयकी पर्यायमें विद्यमान है, दूसरे पथ्थरमें वैसी योग्यता उस समय नहीं होती है। उपादानपनेकी योग्यता सोईमें है अतः वह खींचती है, उसी समय ही लोहचुंबक पथ्थरमें निमित्तपनेकी योग्यता है अतः उसे निमित्त कहा जाता है। एक समयकी उपादानकी योग्यता उपादानमें विद्यमान है, और एक समयका निमित्तका सामर्थ्य निमित्तमें है, दोनोंकी योग्यतामें एक दूसरेका सम्बन्ध है, अतः अनुकूल निमित्त कहा जाता है। लोहचुंबकमें निमित्तपनेकी जो योग्यता है उसे अन्य सब पदार्थोंसे भिन्न करके पहिचाननेमें उसे 'निमित्त' कहा जाता है, तथापि सुईमें किंचित् भी विलक्षणता होती नहीं। जब उपादानमें कार्य होता है तब व्यवहारसे—आरोपसे दूसरे पदार्थको निमित्त कहते हैं। ज्ञानका स्वभाव स्व-पर प्रकाशक है अतः वह उपादान और निमित्त दोनोंको जानता है।

२९. निमित्तका स्वरूप समझनेके लिये धर्मास्तिकायका दृष्टांत।

समस्त निमित्त 'धर्मास्तिकायवत्' हैं (देखो, इष्टोपदेश गाथा— ३५) धर्मास्तिकाय पदार्थ तो लोकमें सर्वत्र विद्यमान है। जब वस्तु अपनी योग्यतासे गमन करती है तब धर्मास्तिकायको निमित्त कहा

जाता है; यदि वस्तुका गमन ही न हो तो उसे निमित्त भी नहीं कहते। धर्मास्तिकायकी तरह समस्त निमित्तका स्वरूप समझ लेना चाहिये। धर्मास्तिकायमें निमित्तपनेकी ऐसी योग्यता है कि पदार्थ स्वयं गति करते हैं तब उसे निमित्त कहा जाता है, परन्तु स्थितिमें उसे निमित्त नहीं कहा जाता। स्थितिमें निमित्त कहा जाये—ऐसी सामर्थ अधर्मास्तिकायमें है।

३०. सिद्ध भगवानका अलोकमें गमन क्यों नहीं करते ?

सिद्ध भगवान स्वयं क्षेत्रान्तरकी योग्यतासे एक समयमें जब लोकाग्रमें गमन करते हैं तब धर्मास्तिकायको निमित्त कहा जाता है। लेकिन धर्मास्तिकायके अभावके कारण उनका अलोकमें गमन नहीं होता—ऐसा भी नहीं है। लोकाग्रमें जब सिद्ध भगवान स्थिर होते हैं वह उनकी स्वयंकी योग्यताके कारण है। अधर्मास्तिकायको उस समय निमित्त कहा जाता है।

प्रश्न :—लोकाकाशके बाहर सिद्ध भगवान गमन क्यों नहीं करते ?

उत्तर :—उनकी योग्यता ही ऐसी है, क्योंकि वह लोकका द्रव्य है और उसका सामर्थ लोकके अन्त भाग तक ही है; लोकाकाशमें बाह्य गमनका उनमें सामर्थ नहीं है। अलोकमें धर्मास्तिकायका अभाव है अतः सिद्ध वहाँ गमन नहीं करते हैं—यह केवल व्यवहारनयका कथन है अर्थात् उपादानमें स्वयं योग्यता अलोकमें जानेकी न हो तब निमित्त भी वैसा विद्यमान—होता है। ऐसे उपादान—निमित्तका संयोग बतलानेके लिये कथन है।

३१. प्रत्येक पदार्थका कार्य स्वतंत्र है।

किसीने अपने मुनीमको पत्र लिखा कि कुछ रुपये बैंकमें जमा

कर दो। और मुनीमने पैसे बैंकमें जमा लिये, उसमें जीवने केवल पत्र लिखनेका विकल्प किया अतः पत्र लिखा गया—ऐसा भी नहीं है। पत्रकी प्राप्ति हुई अतः मुनीमको बैंकमें रुपये जमा करनेका विकल्प आया—ऐसा नहीं है। और मुनीमको विकल्प आया अतः रुपये बैंकमें जमा किया गया ऐसा भी नहीं है। उसी प्रकार रुपये बैंकमें जमा करने थे। अतः मुनीमको विकल्प आया—ऐसा भी नहीं है। इस प्रकार प्रत्येक पदार्थमें समझ लेना। जीवका विकल्प स्वतंत्र, कागजकी अवस्था स्वतंत्र, मुनीमका विकल्प स्वतंत्र, और रुपयोंकी अवस्था स्वतंत्र है। मुनीमको विकल्प आया तब कागजको निमित्त कहा जाता है, तथा बैंकमें पैसा जमा करनेकी क्रिया हुई तब मुनीमका विकल्प उसका निमित्त कहा जाता है।

३२. निमित्तके कारण उपादानमें विलक्षण दशा नहीं होती।

प्रश्न :—उपादानमें निमित्त कुछ भी नहीं करता है यह बात ठीक है, परन्तु जब निमित्त उपस्थित हो तब तो उपादानमें विलक्षण अवस्थाका प्रादुर्भाव होना ही चाहिये। जिस प्रकार अग्निरूपी निमित्त उपस्थित होता है उस समय पानीको गर्म होना ही पड़ता है।

उत्तर :—यह बात झूठी है; जलकी पर्यायका स्वभाव उस समय उष्ण होना था तब अग्निका संयोग प्राप्त हुआ और जल स्वयं अपनी योग्यतासे उष्ण हुआ है। अग्निके कारण उसमें विलक्षणता हुई ऐसा नहीं है—और अग्निने पानीको उष्ण नहीं किया।

३३. मिथ्यादृष्टि संयोगको देखते हैं, सम्यग्दृष्टि स्वभावको देखते हैं।

अग्निसे जल उष्ण हुआ—ऐसी मान्यता वह संयोगाधीन पराधीन दृष्टि है, और जल स्वयं अपनी योग्यतासे उष्ण हुआ है—ऐसी मान्यता



स्वतंत्र स्वभावदृष्टि है। संयोगाधीन दृष्टि वह मिथ्यादृष्टि है, और स्वभावदृष्टि वह सम्यग्दृष्टि है।

मिथ्यादृष्टि जीव, वस्तुके स्वभावकी समय-समयकी योग्यतासे ही प्रत्येक कार्य होता है ऐसे स्वभावको देखता नहीं है। लेकिन निमित्तके संयोगको देखता है यही उसकी पराधीनदृष्टि है और उस दृष्टिसे परकी एकत्वबुद्धि कभी दूर नहीं होती। सम्यग्दृष्टि जीव स्वतंत्र वस्तु स्वभावको देखता है, जैसे कि प्रत्येक वस्तुकी समय-समयकी योग्यतासे ही उसका कार्य स्वतंत्रपने होता है।

### ३४. उपादान और निमित्त दोनोंकी स्वतंत्र योग्यता (वस्त्र और अग्नि)

वस्त्रमें जिस समय जिस क्षेत्रमें जिस संयोगसे जलनेकी योग्यता होती है, उस समय, उस क्षेत्रमें, उस संयोगमें उसकी जलनेकी पर्याय होती है, और अग्नि उस समय स्वयं विद्यमान होती है, अग्निके कारण वस्त्र जला-ऐसा नहीं है। और वस्त्रमें जलनेकी योग्यता हो तो भी अग्नि या दूसरा योग्य पदार्थ न आये तो वह अवस्था रुक जायेगी-ऐसा भी नहीं है; जिस समय योग्यता होती है उसी समय वस्त्र जलता है और उस समय अग्नि उपस्थित होती ही है। तथापि अग्निकी उपस्थितिके कारण वस्त्रकी अवस्थामें कुछ भी विलक्षणता नहीं होती। अग्निने वस्त्रको जलाया यह मान्यता झूठी है।

कोई पूछता है कि वस्तु जलते समय अमुक अग्नि था और दूसरा अग्नि नहीं था उसका कारण क्या ? उसका उत्तर यह है कि- उस समय जो अग्नि विद्यमान था उसमें निमित्तपनेकी योग्यता थी, दूसरा अग्नि विद्यमान नहीं होता क्योंकि उसमें निमित्तपनेकी योग्यता

ही नहीं होती। उपादानके अवसर पर जिस निमित्तकी योग्यता होती है वही निमित्त उपस्थित होता है, दूसरा नहीं। सबकी सर्व अवस्थाएँ अपने- अपने कारणसे हो रही हैं, वहाँ निमित्तसे हुआ अथवा निमित्तने किया-ऐसा अज्ञानी मानता है।

### ३५. उपादान और निमित्त दोनोंकी स्वतंत्र योग्यता (आत्मा और कर्म)

आत्मा अपनी पर्यायमें जब राग-द्वेष करता है तब कर्मके जिन परमाणुओंकी योग्यता होती है वही उदयरूप परिणमित होते हैं। कर्म न हो ऐसा नहीं होता; परन्तु कर्म उदयमें आया अतः जीवको राग-द्वेष हुए यह मान्यता मिथ्या है। और राग-द्वेष किये अतः कर्मका आगमन हुआ-यह मान्यता भी झूठी है। जीवको अपनी पुरुषार्थकी कमजोरीसे राग-द्वेष होनेकी योग्यता थी अतः राग-द्वेष हुए और उस समय जिन कर्मोंकी योग्यता थी वे ही कर्म उदयमें आये हैं और उन्हें ही निमित्त कहा जाता है, परन्तु कर्मके कारण जीवकी पर्यायमें राग-द्वेष या विलक्षणता नहीं होती।

जब ज्ञानकी पर्याय अपूर्ण होती है तब ज्ञानावरण कर्ममें ही निमित्तपनेकी योग्यता होती है। जीवकी पर्यायमें जीव मोह करता है तब मोहकर्मको ही निमित्त कहा जाता है ऐसी कर्मपरमाणुओंकी योग्यता होती है। जिस प्रकार उपादानमें समय-समय स्वतंत्र योग्यता होती है, उसी प्रकार निमित्तरूप मोहकर्मके वे प्रत्येक परमाणुओंमें समय-समयकी योग्यता होती है।

प्रश्न :—जीवने राग-द्वेष किये अतः कर्म अवस्था परमाणुओंमें हुई ?

उत्तर :—नहीं; कुछ परमाणु कर्मरूप परिणमित हुए और

जगतके अन्य परमाणु क्यों परिणमित नहि हुए ? अर्थात् जिन-जिन परमाणुओंमें योग्यता थी वे ही परमाणु कर्मरूप परिणमित हुए हैं। वे स्वयं अपनी योग्यतासे कर्मरूप हुए हैं। जीवके राग-द्वेषके कारण नहीं।

३६. पर ऊपर नहीं देखना है परन्तु स्व ऊपर देखना है।

प्रश्न :—जब परमाणुओंमें कर्मरूप होनेकी योग्यता होती है तब आत्माको राग-द्वेष करना ही पड़ता है। क्योंकि परमाणुओंमें कर्मरूप होनेका उपादान है वहाँ जीवका विकाररूप निमित्त भी होना चाहिए—यह बात ठीक है ?

उत्तर :—यह प्रश्न ही अज्ञानीका है। तेरे स्वभावमें देखनेका कार्य है कि परमाणुओंमें जिन्हें स्वतंत्र दृष्टि प्रगट हुई है वे आत्माको देखते हैं, और जिनकी निमित्ताधीन दृष्टि है वे पर उपर देखते हैं। वस्तुकी जो अवस्था जिस समय होनेकी होगी तभी होगी—ऐसा जिसने यथार्थ निर्णय किया उन्हें द्रव्यदृष्टि हुई—स्वभावदृष्टि हुई; अब उसे स्वभावदृष्टिके कारण तीव्र रागादि होते ही नहीं और उस जीवके निमित्तसे तीव्र कर्मरूप परिणमित हों ऐसी योग्यतावाले परमाणु इस संसारमें होते ही नहीं हैं। जीवने अपने स्वभावके पुरुषार्थसे सम्यग्दर्शन प्रगट किया तो वहाँ इस जीवके लिये मिथ्यात्वादि कर्मरूपसे परिणमित हों ऐसी योग्यता जगतके किसी भी परमाणुओंमें होती ही नहीं। सम्यग्दृष्टिको जो अल्प राग-द्वेष है वह अपनी वर्तमान पर्यायकी योग्यतासे हो रहे हैं, उस समय अल्प कर्मरूप बँधानेकी परमाणुओंकी पर्यायमें योग्यता है। इस प्रकार स्वलक्षसे प्रारम्भ करना है।

जगतके परमाणुओंमें मिथ्यात्वादि कर्मरूप होनेकी योग्यता है

अतः जीवको मिथ्यात्वादि भाव होना ही चाहिये ऐसी जिसकी मान्यता है वह जीव स्वद्रव्यके स्वभावको जानता नहीं, अतः वह जीवको निमित्त, मिथ्यात्वादिरूप परिणमित होने योग्य परमाणु इस जगतमें हैं, ऐसा जानना है। लेकिन स्वभावदृष्टिके द्वारा देखनेवाले जीवको मिथ्यात्व होता ही नहीं और उस जीवके निमित्तसे मिथ्यात्वादिरूप परिणमन हो ऐसी योग्यता जगतके किसी भी परमाणुमें नहीं होती। स्वभावदृष्टिसे ज्ञानी विकारका अकर्ता हो जाता है अतः “ज्ञानीको विकार करना पड़ेगा” यह बात झूठी है। जो अल्प विकार होता है वह भी स्वभावदृष्टिके जोरके पुरुषार्थ द्वारा टालता ही जाता है, ऐसी स्वतंत्र स्वभावदृष्टि (सम्यक् श्रद्धा) किये बिना जीव कुछ भी शुभभावरूप व्रत, तप, त्याग आदि करता है वह सब अरण्यरुदनके समान मिथ्या है।

### ३७. फूंकसे पर्वत उड़ानेकी बात!!!

**शंकाकार :**—वस्तुमें जब जो पर्याय होनेकी है वही होती है और तब निमित्त उपस्थित होता है; परन्तु निमित्त कुछ करता है या निमित्तके द्वारा कुछ कार्य न हो—यह तो फूंकसे पर्वत उड़ाने जैसा है।

**समाधान :**—अरे भाई ! यहाँ तो फूंकसे पर्वत उड़ेगा यह बात भी नहीं है। पर्वतके अनन्त परमाणुओंमें उड़नेकी योग्यता होती है तब पर्वत स्वयं उड़ता है, पर्वतको उड़ानेके लिये मुँहकी हवा आवश्यक नहीं होती, किसीको ऐसा लगे कि अरे, यह कैसी बात है ? क्या पर्वत स्वयंमेव उड़ता है ? परन्तु भाई, वस्तुमें जो काम होता है (अर्थात् जो पर्याय होती है) वह स्वयं अपने सामर्थ्यसे (योग्यता) होती है। वस्तुकी शक्तियाँ परकी अपेक्षा नहीं रखतीं। पर वस्तुका उसमें अभाव है तो वह क्या करें ?

### ३८. उदासीन निमित्त और प्रेरक निमित्त।

प्रश्न :—निमित्त दो प्रकारके हैं—एक उदासीन तथा दूसरा प्रेरक—उसमेंसे उदासीन निमित्त तो कुछ भी नहीं करता परन्तु प्रेरक निमित्त तो उपादानकी कुछ प्रेरणा करता होगा ?

उत्तर :—निमित्तके भिन्न-भिन्न प्रकारको पहिचाननेके लिये यह दो भेद हैं, लेकिन दोनोंमेंसे कोई भी निमित्त उपादानमें कुछ भी नहीं करता, अथवा निमित्तके कारण उपादानमें कुछ विलक्षणता नहीं आती। प्रेरक निमित्त भी प्रेरणा नहीं करता। समस्त निमित्त धर्मास्तिकायवत् हैं।

प्रश्न :—प्रेरक और उदासीन निमित्तकी व्याख्या क्या है ?

उत्तर :—उपादानकी अपेक्षासे तो दोनों पर हैं, दोनों अकिंचित्कर हैं अतः दोनों समान हैं। निमित्तकी अपेक्षासे यह दो भेद हैं। जो निमित्त स्वयं इच्छावान अथवा गतिमान होता है उसे प्रेरकनिमित्त कहते हैं, और जो निमित्त स्वयं स्थिर या इच्छारहित होता है उसे उदासीन निमित्त कहा जाता है। इच्छावाला जीव और गतिमान अजीव वह प्रेरक निमित्त है तथा इच्छारहित जीव और गतिरहित अजीव वे उदासीन निमित्त हैं परन्तु दोनों प्रकारके निमित्त परमें किंचित् मात्र भी कार्य नहीं करते। घड़ेकी उत्पत्तिमें कुम्हार और चाक प्रेरक निमित्त हैं और धर्मास्तिकाय आदि उदासीन निमित्त हैं।

महावीर भगवानके समवशरणमें गौतमगणधरके आने पर दिव्यध्वनि छूटी और पूर्वमें ६६ दिन तक गौतमके आनेके कारण वाणी नहीं निकली—यह बात सच्ची नहीं है। वाणीके परमाणुओंमें जिस समय वाणीरूप परिणमन करनेकी योग्यता थी उसी समय वे वाणीरूप परिणमित हुए हैं और ठीक उसी समय गणधरदेव उपस्थित

होते हैं। गणधरके आगमनसे वाणी निकली—ऐसा नहीं है। गणधरका जिस समय आगमन हुआ उसी समय उनके आगमनकी योग्यता थी। ऐसा ही सहज निमित्त-नैमित्तिक संबंध होता है। अतः गौतम गणधरका आगमन नहीं होता तो वाणी नहीं निकलती ? ऐसे तर्कका कोई मतलब नहीं है।

३९. निमित्त न हो तो..... ?

‘कार्यका होना हो और निमित्त न हो तो.....? ऐसी शंका करनेवालेसे ज्ञानी पूछते हैं कि ‘हे भाई, तेरा जीव इस जगतमें न होता तो ? अथवा तुम अजीव होते तो ?’ शंकाकार उत्तर देता है कि— मैं जीव ही हूँ अतः दूसरे तर्कको स्थान नहीं है। ज्ञानी कहते हैं कि जिस प्रकार तुम स्वभावमें जीव ही हो उसमें तर्कका स्थान नहीं है, इसी प्रकार जब उपादानमें कार्य होता है तब निमित्त होता है’ ऐसा ही उपादान-निमित्तका स्वभाव है, अतः उसमें अन्य तर्कका अवकाश ही नहीं है।

४०. कमलकी विकसित होनेकी योग्यता हो और सूर्यका उदय न हो तो..... ?

कमलका विकसित होना और सूर्यका उदय दोनोंमें सहज निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। तथापि सूर्यउदयके कारण कमल विकसित नहीं हुआ, कमल स्वयंकी (पर्यायकी) योग्यतासे विकसित हुआ है।

प्रश्न :—सूर्यका उदय न हो तो कमल भी विकसित नहीं होगा ?

उत्तर :—‘कार्य होना हो परन्तु निमित्त न हो तो ?’ जैसा

प्रश्न है। उसका समाधान उपरकी युक्तिके द्वारा समझ लेना चाहिये। जब कमलमें विकसित होनेकी योग्यता होती है तब सूर्यकी भी स्वयं उदय होनेकी योग्यता होती है—ऐसा स्वभाव है। कमलमें विकसित होनेकी योग्यता हो और सूर्यका उदय न हो—ऐसा कभी बनता नहीं है। तथापि सूर्यके निमित्तसे कमल विकसित नहीं हुआ और कमलको विकसित होना है अतः सूर्य उदय होता है—ऐसा भी नहीं है।

४१. जब सूर्य उदित होता है तभी कमल विकसित होता है—  
उसका कारण क्या है ?

प्रश्न :—सूर्यके निमित्तसे कमल विकसित न हो तो 'यदि सूर्यका उदय ६ बजे होगा तो कमल ६ बजे विकसित होगा, और सूर्य सात बजे उदय होगा तो कमल भी सात बजे विकसित होगा—  
ऐसा होनेका कारण क्या है ?

उत्तर :—उसी समय कमलमें विकसित होनेकी योग्यता थी; इसलिये तब ही वह विकसित होता है। प्रथम स्वयंमें विकसित होनेका सामर्थ्य नहीं था। और उसकी योग्यता बंद रहनेकी थी। एक समयमें दो विरुद्ध प्रकारकी योग्यता नहीं हो सकती।

४२. यह जैनदर्शनका मूल रहस्य है।

अहा, स्वतंत्र निरपेक्ष वस्तुस्वभाव है उस स्वभावको जब तक जानता नहीं तबतक जीवको अहंकारसे सच्ची उदासीनता आती नहीं, विकारके कर्ताके लिये नहि अपनी पर्यायका मालिक (आधार) जो आत्मस्वभाव उसकी दृष्टि नहीं होती। यह स्वतंत्रता ही जैनदर्शनका मुख्य रहस्य है।

### ४३. एक परमाणुका स्वतंत्र सामर्थ्य।

प्रत्येक जीव तथा अजीव द्रव्योंकी पर्याय स्वतंत्ररूपसे स्वयं होती है। एक परमाणु स्वयंके सामर्थ्यसे परिणमित होता है; उसमें निमित्तका क्या प्रयोजन ? एक परमाणु प्रथम समयमें काला था और दूसरे समयमें सफेद हो जाता है, उसी प्रकार प्रथम समयमें एक अंश काला होता है और दूसरे समयमें अनन्तगुना काला हो जाता है, उसमें निमित्त किसको कहोगे ? वह स्वयं अपनी लायकातसे स्वयं परिणमित हो जाता है।

### ४४. इन्द्रिय और ज्ञानका स्वतंत्र परिणमन : निमित्त-नैमित्तिक संबंधका स्वरूप

जड़ इन्द्रियाँ हैं अतः आत्माको ज्ञान होता है यह बात झूठी है। आत्माका त्रिकाली सामान्य ज्ञानस्वभाव स्वयं अपने कारण समय समय पर परिणमित होता है; और जिस पर्यायमें जैसी योग्यता होती है उतना ही ज्ञानका सामर्थ्य होता है। पाँच इन्द्रिय संबंधी ज्ञानका उघाड़ है अतः पाँच बाह्य इन्द्रियाँ हैं-ऐसा नहीं है। ज्ञानकी पर्यायमें जितनी योग्यता थी उतना ही विकास हुआ है, और परमाणुओंमें इन्द्रियरूप होनेकी योग्यता थी वे स्वयं इन्द्रियरूप परिणमित हुए हैं। तथापि दोनोंमें निमित्त-नैमित्तिक संबन्ध है। जिस जीवको एक इन्द्रियके ज्ञानका उघाड़ है उसे एक ही इन्द्रिय होती है। दोवालेको दो, तीनवालेको तीन, चारवालेको चार और पाँच इन्द्रियके सामर्थ्यवालेको ही पाँच इन्द्रियाँ होती हैं। वहाँ दोनोंका स्वतंत्र परिणमन है। एकके द्वारा दूसरेका कुछ नहीं होता, इसे ही निमित्त-नैमित्तिक संबंध कहते हैं।



४५. राग-द्वेषका कारण कौन ?—

सम्यग्दृष्टिको राग-द्वेष क्यों होते हैं ?

प्रश्न :—यदि कर्म आत्माको विकार नहीं कराते हो तो, आत्मामें विकार होता है उसका कारण कौन है ? सम्यग्दृष्टि जीवोंको तो विकार करनेकी भावना होती नहीं तथापि उन्हें विकार होता है, अतः कर्म विकार कराते हैं न ?

उत्तर :—कर्म आत्माको विकार कराते हैं यह बात झूठी है। आत्मामें स्वयं अपनी पर्यायके दोषके कारण विकार उत्पन्न होता है; कर्म विकार कराता ही नहीं परन्तु आत्माकी पर्यायकी ऐसी ही योग्यता है। सम्यग्दृष्टिको राग-द्वेष करनेकी भावना नहीं होती तथापि राग-द्वेष होता है उसका कारण चारित्रगुणकी पर्यायकी योग्यता है। राग-द्वेषकी भावना नहीं वह तो श्रद्धागुणकी पर्याय है और राग-द्वेष होते हैं वह चारित्रगुणकी पर्याय है। पुरुषार्थकी कमजोरीसे राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं—ऐसा कहना भी निमित्तका कथन है। वास्तवमें तो चारित्रगुणकी उस समयकी योग्यताके कारण ही राग-द्वेष होते हैं।

४६. सम्यक् निर्णयका जोर।

प्रश्न :—विकार होता है वह चारित्रगुणकी पर्यायकी ही योग्यता है, तो फिर जबतक चारित्रगुणकी पर्यायमें विकार करनेका सामर्थ्य है तब तक विकार होता ही रहेगा, अतः विकारको मिटानेका सामर्थ्य जीवके आधीन नहीं रहता ?

उत्तर :—एक-एक समयकी स्वतंत्र योग्यता है—ऐसा निर्णय किस ज्ञानमें किया ? त्रिकाली स्वभावकी ओर उन्मुख हुये बिना एक समयकी पर्यायकी स्वतंत्रताका निर्णय नहीं हो सकता। और जब ज्ञान त्रैकालिक स्वभावमें मग्न हुआ वहाँ स्वभावकी प्रतीती

के जोरसे पर्यायमेंसे राग-द्वेष होनेकी योग्यता क्षण-क्षणमें कम होती जाती है। जिसने स्वभावका निर्णय किया उसकी पर्यायमें अधिक समय राग-द्वेष विद्यमान रहेगा-ऐसी योग्यता होती ही नहीं है, सम्यक् निर्णयका—ऐसा सामर्थ्य है।

४७. कार्यमें निमित्त कुछ नहीं करता तथापि उसे 'कारण' क्यों कहा है।

कार्यके दो कारण कहनेमें आये हैं, एक उपादानकारण है, वही यथार्थ कारण है, दूसरा निमित्तकारण है वह तो आरोपित कारण है, उपादान और निमित्त यह दो कारण कहनेका आशय ऐसा नहीं है कि दोनों मिलकर कार्यको करते हैं। जब उपादानकारण स्वयं कार्य करता है तब दूसरी अनुकूल वस्तुको आरोपसे निमित्तकारण कहा जाता है, वास्तवमें वह कारण ही नहीं है।

प्रश्न :—निमित्त वास्तविक कारण नहीं है तो फिर उसे कारण क्यों कहा जाता है ?

उत्तर :—जिन्हें निमित्त कहा जाता है उस पदार्थमें उस प्रकारकी (निमित्तरूप होनेकी) योग्यता होती है। अतः दूसरे पदार्थोंसे उसे पृथक् पहिचाननेके लिये उसे 'निमित्तकारण' ऐसी संज्ञा दी जाती है। ज्ञानका स्वभाव स्व-पर प्रकाशक है अतः वह परको भी जानता है, और परमें निमित्तपनेकी योग्यता है उसे भी जानता है।

४८. कर्म उदयके कारण जीवको विकार नहीं होता।

जीवकी पर्यायमें जब विकार होता है तब कर्म निमित्त रूपमें होता है। परन्तु जीवकी पर्याय और कर्म यह दोनों एक होकर विकार नहीं करते हैं। कर्म उदयके कारण विकार नहीं होता, और विकार

किया अतः कर्म उदयमें आया—ऐसा भी नहीं है। जीव विकार न करे तब कर्म खिर जाते हैं उन्हें निमित्त कहा जाता है। जीवने विकार नहीं किया अतः कर्मकी निर्जरा हुई यह बात सत्य नहीं है। परमाणुओंकी योग्यता उसीप्रकार होती है।

जिस द्रव्यकी जिस समयमें, जिस क्षेत्रमें, जैसे संयोगमें और जिस प्रकारकी अवस्था होनेकी है उसी प्रकार होती है। उसमें परिवर्तन होता ही नहीं ऐसी श्रद्धामें तो वीतरागी दृष्टि हो जाती है। स्वभावकी दृढ़ता और स्थिरताकी एकता है और विकारसे उदासीन और परमें भिन्नता है; उसमें समय समय पर भेदविज्ञानका ही कार्य है।

#### ४९. नैमित्तिककी परिभाषा।

प्रश्न :—नैमित्तिकका अर्थ व्याकरण अनुसार तो 'निमित्तसे होता है' ऐसा होता है। परन्तु यहाँ कहा है कि निमित्तसे नैमित्तिकमें कुछ भी नहीं होता।

उत्तर :—निमित्तसे हो वह नैमित्तिक है अर्थात् निमित्त जनक और नैमित्तिक जन्य है' ऐसी परिभाषा व्यवहारसे कही जाती है; वास्तवमें निमित्तसे नैमित्तिक नहीं होता। उपादानका कार्य वह नैमित्तिक है और जब नैमित्तिकमें कार्य होता है तब निमित्त स्वयं उपस्थित होता है, अतः उपचारमें उस निमित्तको जनक भी कहा जाता है। तथा नैमित्तिकका अर्थ जिसमें निमित्तका सम्बन्ध हो ऐसा भी होता है; जब नैमित्तिक होता है, तब निमित्त अवश्य ही होता है सिर्फ इतना संबंध है, यदि निमित्त जो नैमित्तिकमें कुछ भी करे तो वह निमित्त—नैमित्तिक सम्बन्ध नहीं रहता लेकिन कर्ता—कर्म सम्बन्ध हो जाता है।

५०. 'निमित्तकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये परन्तु निमित्त मिलाना चाहिए' यह मान्यता मिथ्या है।

प्रश्न :—किसीको पुत्रप्राप्तिका योग था लेकिन दस वर्ष तक विषय भोग नहीं किया अर्थात् पुत्रप्राप्तिका निमित्त प्राप्त नहीं हुआ। अतः निमित्तको मिलाना चाहिये। निमित्तके रास्तेमें उपादानका कार्य होता ही है, अपनेको निमित्तकी उपेक्षा नहीं करना चाहिये—यह बात ठीक है ?

उत्तर :—यह बात मिथ्या है। मैं निमित्तको प्राप्त करूँ तो कार्य होगा यह बात गलत है। उसमें मात्र निमित्ताधीन दृष्टि ही है। (पुत्र सम्बन्धी बात पहले आ गई है देखो पेशाग्राफ ९) निमित्त न था अतः कार्य रुक गया और निमित्तको एकत्रित किया तो कार्य हो गया—यह बात तीन कालमें सत्य नहीं है। जब कार्य नहीं होना था उस समय निमित्त नहीं था और कार्य होना था तब निमित्त उपस्थित होता है—यह अबाधित नियम है परन्तु निमित्तोंको आत्मा मिला सकता है ऐसा मानना मिथ्यात्व है।

इस प्रकार, आत्माको अपने कार्यमें परकी अपेक्षा नहीं है; तथापि 'हमें निमित्तकी उपेक्षा नहीं करना चाहिए ऐसा कोई माने तो वह जीव सदैव निमित्त सन्मुख ही देखता रहेगा अर्थात् उसकी दृष्टि सदैव परके ऊपर रहेगी लेकिन परकी उपेक्षा करके स्वभावका निर्मल कार्य प्रगट नहीं होगा। निमित्तके द्वारा उपादानमें कार्य कभी भी नहीं होता परन्तु उपादानकी योग्यतासे ही (उपादानके द्वारा ही) उसका कार्य होता है।

५१. जिनशासन निमित्तकी उपेक्षा करनेका कहता है।

निमित्तकी उपेक्षा नहीं करना अर्थात् परद्रव्यके साथका सम्बन्ध

अलग न करना यह बात जैनशासनमें विरुद्ध है। जैनशासनका प्रयोजन परके साथ सम्बन्ध करानेका नहीं है परन्तु परके साथ सम्बन्ध छोड़कर वीतरागभाव करानेका है। समस्त सत्-शास्त्रोंका तात्पर्य वीतराग भाव है और वह वीतरागभाव स्वभावके आश्रयसे समस्त परपदार्थोंसे उदासीनता करनेसे ही होता है। किसी भी परके लक्षमें अटकना वह शास्त्रका प्रयोजन नहीं है, क्योंकि परके लक्षसे राग होता है। निमित्त भी परद्रव्य ही है; अतः निमित्तकी अपेक्षा छोड़कर अर्थात् उसकी उपेक्षा करके अपने स्वभावकी अपेक्षा करना ही प्रयोजन है। निमित्तकी उपेक्षा करने जैसी नहीं है अर्थात् निमित्तका लक्ष छोड़ने जैसा नहीं है ऐसा अभिप्राय वह तो मिथ्यात्व है और मिथ्या अभिप्रायका त्याग करने पर भी अस्थिरताके कारण निमित्त पर लक्ष जाता है वह रागका कारण है। अतः स्वभावके आश्रयसे निमित्त आदि परद्रव्योंकी उपेक्षा करना योग्य है।

५२. मुमुक्षु जीवोंको यह बात समझनी चाहिये।

उपादान-निमित्त सम्बन्धी यह बात विशेष प्रयोजनभूत है, इसे समझे बिना कभी भी जीवको दो द्रव्योंकी एकत्वबुद्धि नहीं मितेगी और स्वभावकी श्रद्धा नहीं होगी, अर्थात् जीवका कल्याण नहीं होगा। ऐसा ही वस्तुस्वभाव केवल ज्ञानीओंने देखा है और संत मुनिओंने कहा है। यदि जीवको कल्याण करना है तो यह समझना पड़ेगा।

५३. समर्थ कारणकी परिभाषा।

प्रश्न :—समर्थ कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर :—जब उपादानमें कार्य होता है तब उपादान और निमित्त दोनों साथमें ही होते हैं अतः दोनोंको समर्थ कारण कहा जाता है। वहाँ प्रतिपक्षी कारणोंका अभाव होता है। साधारण ऐसा नहीं

समझना कि उपादानके कार्यमें निमित्त कुछ करता है। जब उपादानकी योग्यता होती है तब निमित्त उपस्थित होता ही है।

प्रश्न :—समर्थ कारण वह द्रव्य, गुण अथवा पर्याय है ?

उत्तर :—वर्तमान पर्याय(युक्त द्रव्य) ही समर्थ कारण है। पूर्व पर्यायको वर्तमान पर्यायका उपादानकारण कहना वह व्यवहार है। निश्चयसे तो वर्तमान पर्याय स्वयं ही कारण कार्य है। इससे भी आगे यदि कहा जाये तो एक पदार्थमें कारण और कार्य ऐसे दो भेद करना वह भी व्यवहार है। वास्तवमें तो प्रत्येक समयकी पर्याय अहेतुक है।

५४. उपादान कारणकी परिभाषा।

प्रश्न :—माटीको घड़ाका उपादानकारण कहना ठीक है ?

उत्तर :—वास्तवमें घड़ाका उपादानकारण मृत्तिका मात्र नहीं है, परन्तु जिस समय घड़ेका निर्माण होता है उस समयकी मृत्तिकाकी अवस्था ही स्वयं उपादानकारण है ऐसा होने पर भी मृत्तिकाको घड़ेका उपादानकारण कहनेका कारण यह है कि घड़ा होनेमें मिट्टीमें ही सामान्य योग्यता है वैसी योग्यता दूसरे पदार्थोंमें नहीं है। मिट्टीमें घड़ारूप होनेकी विशेष योग्यता तो जिस समय हुआ उसी समय ही है। इसके पूर्व उसमें घडेरूप होनेकी विशेष योग्यता नहीं है; इसलिये विशेष योग्यता ही वास्तविक उपादानकारण है। इस विषयको विशेष स्पष्ट करनेके लिये इसे जीवमें लगाते हैं; सम्यग्दर्शन प्रगट करनेकी सामान्य योग्यता तो प्रत्येक जीवमें है, जीवके अतिरिक्त दूसरे किसी भी द्रव्योंमें ऐसी सामान्य योग्यता नहीं होती। सम्यग्दर्शनकी सामान्य योग्यता तो (शक्ति) तो सब जीवोंमें हैं परन्तु विशेष योग्यता तो भव्य

जीवोंमें ही होती है। तथा भव्य जीव जबतक मिथ्यादृष्टि रहता है तबतक उसे भी सम्यग्दर्शनकी विशेष योग्यता नहीं है, विशेष शक्ति तो जिस समय जीव पुरुषार्थमें सम्यग्दर्शन प्रगट करता है उस जीवमें उसी समय होती है। सामान्य शक्ति तो द्रव्यरूप है और विशेष शक्ति पर्यायरूप है; सामान्य शक्ति (योग्यता) मात्र कार्य प्रगट होनेका उपादानकारण नहीं है परन्तु विशेष योग्यता युक्त द्रव्य ही उपादान कारण है।

#### ५५. चारित्रदशा और वस्त्र सम्बन्धी स्पष्टीकरण।

प्रश्न :—जब चारित्र दशा प्रगट होती है उसके कारण वस्त्रका त्याग नहीं होता परन्तु वस्त्रके परमाणुओंकी योग्यतासे ही त्याग होता है ऐसा कहा जाता है; परन्तु किसी जीवको चारित्रदशा प्रगट होने पर वस्त्रमें उस समय छूटनेकी योग्यता न हो तो सवस्त्रमुक्ति हो जायगी ?

उत्तर :—वहाँ सवस्त्रमुक्ति होनेकी बात नहीं है। चारित्रदशाका स्वरूप ही ऐसा है कि वहाँ वस्त्रके साथ निमित्त-नैमित्तिक संबंध ही नहीं होता। अतः चारित्रदशामें वस्त्रका त्याग सहजरूपसे होता है, वस्त्रका त्याग वह परमाणुओंकी अवस्थाकी योग्यता है, उसका कर्ता आत्मा नहीं है।

प्रश्न :—किसी मुनिराजके शरीर उपर वस्त्र डाल दे तो उस समय उनके चारित्रका क्या होगा ?

उत्तर :—दूसरा कोई जीव मुनिराजके उपर वस्त्र डाल दे तो उस समय मुनिराजको चारित्रमें दोष नहीं आता। क्योंकि उस वस्त्रके साथ मुनिराजके चारित्रका निमित्त-नैमित्तिक संबंध नहीं है परन्तु वहाँ वस्त्र तो ज्ञानका ज्ञेय है, अर्थात् ज्ञेय ज्ञायकपनेका निमित्त-नैमित्तिक संबंध है।

५६. सम्यक् नियतवाद क्या है ?

वस्तुकी पर्याय क्रमबद्ध होती है कि जिस समय जो पर्याय होनी होगी वही होगी—ऐसा सम्यक् नियतवाद वह जैनदर्शनका सच्चा स्वभाव है—यही वस्तुस्वभाव है। 'नियत' शब्द शास्त्रमें अनेक स्थलों पर आता है, परन्तु आजकल तो शास्त्रपाठी भी सम्यक्नियतवादकी बात सुनकर भ्रमणमें पड़ जाते हैं इसका निर्णय करना कठिन होता है अतः कोई 'एकान्तवादी' कहकर (आरोप लगाकर) ये बातको उड़ाते हैं। नियत अर्थात् निश्चय—नियमबद्ध, वह एकान्तवाद नहीं अपितु वस्तुका यथार्थ स्वभाव है—वही अनेकान्तवाद है। सम्यक्नियत-वादका निर्णय करनेसे बाह्यमें (तुरंत) राजपादका संयोग भी छूट जाता है—ऐसा नियम नहीं है; परन्तु उसके प्रति यथार्थ उदासीनभाव तो अवश्य हो जाता है। बाह्य संयोगमें तो परिवर्तन हो या न भी हो परन्तु अन्तरके उपादानमें परिवर्तन हो जाता है। अज्ञानी जीव नियतवादकी बाते करता है लेकिन ज्ञान और पुरुषार्थको स्वभाव सन्मुख मोड़कर निर्णय नहीं लेता। नियतवादका निर्णय करनेमें जो ज्ञान और पुरुषार्थ आता है उसे जो जीव पहिचाने तो उसे स्वभाव आश्रित वीतरागभाव प्रगट होगा और परसे उदासीनता हो जायेगी। सम्यक् नियतवादका निर्णय किया अर्थात् स्वयं सबका मात्र ज्ञानभावसे जानने—देखनेवाला ही रह गया, पर तथा रागका कर्ता नहीं हुआ।

स्व-चतुष्टयकी पर-चतुष्टयमें नास्ति ही है तो उसमें पर क्या करेगा ? उपादान-निमित्तका यथार्थ निर्णय करता है तो उसमें सम्यक् नियतवादका भी यथार्थ निर्णय आ जाता है, कर्तृत्वभावका त्याग हो जाता है, और वीतराग दृष्टिपूर्वक वीतरागी स्थिरताका प्रारम्भ हो जाता है। अज्ञानी इस नियतवादको एकान्तवाद और गृहीतमिथ्यात्व कहते



हैं परन्तु ज्ञानी कहते हैं कि यह सम्यक्नियतवाद ही अनेकान्तवाद है और उसके निर्णयमें जैनदर्शनका सार आ जाता है, और वह केवलज्ञानका कारण है।

५७. अकस्मात् कुछ है ही नहीं।

प्रश्न :—सम्यग्दृष्टिको अकस्मात् भय होता ही नहीं उसका कारण क्या ?

उत्तर :—क्योंकि सम्यग्दृष्टिको यथार्थ नियतवादका निर्णय है कि जगतके समस्त पदार्थोंकी अवस्था उनकी योग्यता अनुसार ही होती है। और न होने योग्य ऐसा कुछ भी नया उत्पन्न नहीं होता अतः अकस्मात् कुछ भी नहीं है। ऐसी निःशंक श्रद्धाके कारण सम्यग्दृष्टिको अकस्मात्भय नहीं होता। वस्तुकी पर्याये क्रमसर ही होती हैं ऐसी प्रतीति अज्ञानीको नहीं है अतः उसे अकस्मात् लगता है।

५८. निमित्त किसका ? और क्या ?

यदि जीव निमित्तका यथार्थ स्वरूप समझ ले तो निमित्त उपादानमें कुछ करता है यह मान्यता दूर हो जायेगी। जब कार्य होता है तब परको निमित्त कहा जाता है, कार्य होनेके पूर्व तो उसे कोई निमित्त भी नहीं कहता है। जो कार्य हो गया है उसमें निमित्त क्या करेगा ? और कार्य होनेके पूर्व निमित्त किसका ? कुम्भकार किसका निमित्त है ? यदि घटरूपी कार्य होता है तो कुम्भकार उसका निमित्त कहा जाता है, यदि घड़ारूपी कार्य ही न हो तो कुम्भकारको निमित्त भी नहीं कहा जाता। घड़ा होनेसे पूर्व किसीको घड़ेका निमित्त नहीं कहा जा सकता है और घड़ेके बनने पर कुम्भकारको निमित्त कहा

जाता है, कुम्भकारने घड़ेमें कुछ भी नहीं किया यह बात स्वयमेव असत् सिद्ध होती है।

प्रश्न :—उपादानमें कार्य न हो तो परद्रव्यको निमित्त नहीं कहा जाता ऐसा पहले कह चुके हैं, परन्तु इस जीवको धर्मके निमित्त अनन्तबार प्राप्त हुए हैं तथापि स्वयं धर्मको नहीं समझा है—ऐसा कहा जाता है, और उसमें जीवको धर्मरूपी कार्य हुआ नहीं है तो भी परद्रव्योंको धर्मके निमित्त तो कहे गये हैं ?

उत्तर :—इस जीवको अनन्तबार धर्मके निमित्त प्राप्त हुए हैं लेकिन स्वयं धर्म नहीं समझा ऐसा कहा जाता है। वहाँ उपादानमें (जीवमें) धर्मरूपी कार्य नहीं हुआ अतः वास्तवमें वे पदार्थ धर्मके निमित्त नहीं हैं। जो जीव धर्म प्रगट करते हैं उन जीवोंको इस प्रकारके निमित्त मिल जाते हैं—ऐसा ज्ञान कराने हेतु कार्य न होने पर भी स्थूलदृष्टिसे उसे निमित्त कहा जाता है।

५९. अनुकूल निमित्त।

उबलते तेलमें हाथ जल गया वहाँ हाथ जलनेमें उबलता तेल निमित्त है; घड़ा फूटनेमें लकड़ी आदि अनुकूल निमित्त है। अमुक पदार्थको अनुकूल निमित्त कहा जाता है इसके अतिरिक्त दूसरे पदार्थ प्रतिकूल है—ऐसा नहीं समझना चाहिये। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यको अनुकूल या प्रतिकूल होता ही नहीं। निमित्तको अनुकूल कहनेका अर्थ सिर्फ इतना ही है कि—वह पदार्थ कार्यके समय सद्भावरूप होता है और व्यवहार दृष्टिसे अनुकूलताका आरोप उस पर आ सकता है।

६०. दो पर्यायोंकी योग्यता एकसाथ नहीं होती।

एक समयमें (एक पदार्थकी पर्यायमें) दो योग्यता नहीं होती,

क्योंकि जिस समय जैसी योग्यता है वैसी ही पर्याय प्रगट होती है। और उसी समय जो दूसरी योग्यता भी हो तो एकसाथमें दो पर्यायें हो जायेगी। परन्तु ऐसा कभी बन ही नहीं सकता। जिस समय जो पर्याय प्रगट होती है उसी समय दूसरी पर्यायकी योग्यता नहीं होती आटेरूप अवस्थाकी योग्यताके समय रोटीरूपी अवस्थाकी योग्यता नहीं होती है तो फिर निमित्तके न मिलने पर रोटी न हुई—इस बात कहने जैसी ही नहीं है ? और जब रोटी होती है उस समय वह पूर्व आटेकी पर्यायका अभाव करके ही होती है; तो फिर दूसरेको उसका कारण कैसे कहा जाये ? ज्यादा से ज्यादा तो आटेरूप पर्यायका व्यय हुआ उसे ही रोटीरूप पर्यायका कारण कह सकते हैं।

६१. “जीव पराधीन है” अर्थात् क्या ?

प्रश्न :—समयसार नाटकके स्याद्वाद अधिकारके ९वें श्लोकमें जीवको पराधीन कहा है; तब शिष्य पूछता है कि हे स्वामी ! जीव स्वाधीन है या पराधीन ? तब श्रीगुरु उत्तर देते हैं कि—द्रव्यदृष्टिसे जीव स्वाधीन है, और पर्यायदृष्टिसे पराधीन है। वहाँ जीवको पराधीन क्यों कहा ?

उत्तर :—पर्यायदृष्टिसे जीव पराधीन है अर्थात् जीव स्वयं अपने स्वभावका आश्रय छोड़ता है, परके लक्षरूप स्वयं स्वतंत्रपने पराधीन होता है, परद्रव्य किसी जीवको बलजोरीसे पराधीन नहीं करता है। पराधीन अर्थात् स्वयं स्वतंत्ररूपसे परके आधीन होता है—पराधीनपना मानता हैं नहीं कि पर पदार्थ उसे आधीन करते हैं।

६२. द्रव्यानुयोग और चरणानुयोगका क्रम।

प्रश्न :—यह उपादान—निमित्तकी बात तो द्रव्योनुयोगकी है।

परन्तु कोई जीव चरणानुयोगके अनुसार श्रद्धान करके श्रद्धानी हो और वह चरणानुयोगके अनुसार व्रत-प्रतिमा आदि ग्रहण करे, उसके बाद द्रव्यानुसार अनुसार श्रद्धानी होकर सम्यग्दर्शन प्रगट करे—ऐसी जैनधर्मकी परिपाटी है ऐसा कई जीव मानते हैं वह ठीक है ?

उत्तर :—नहीं, ऐसी जैनमतमें परिपाटी नहीं है। परन्तु जिनमतमें तो ऐसी परिपाटी है कि प्रथम सम्यक्त्व हो फिर व्रत हो। अब सम्यक्त्व तो स्व-परका श्रद्धान होने पर होता है तथा वह श्रद्धान द्रव्यानुयोगका अभ्यास करनेसे होता है। अतः सर्व प्रथम वह द्रव्यानुयोग अनुसार श्रद्धान कर सम्यग्दृष्टि होता है और फिर चरणानुयोगके अनुसार व्रत ग्रहण कर व्रती बनता है। इस प्रकार मुख्यरूपसे निम्न दशामें द्रव्यानुयोग कार्यकारी है तथा गौणरूपसे जिन्हें मोक्षमार्गकी प्राप्ति न हो उन्हें पहले किसी व्रतादिका उपदेश दिया जाता है; अतः सर्व जीवोंको मुख्यरूपसे द्रव्यानुयोग अनुसार अध्यात्म उपदेशका अभ्यास करना योग्य है। ऐसा जानकर नीची दशावालोंको भी द्रव्यानुयोगके अभ्याससे विमुख होना योग्य नहीं है।

[मोक्षमार्ग प्रकाशक अधिकार-८]



## 卐 सामान्य ज्ञान और विशेष ज्ञान 卐

कोई जीव ऐसा कहे कि प्रथम ज्ञान नहीं था, निमित्तकी प्राप्ति होने पर प्रगट हुआ है। यदि वह मुझमें ही था तो उसकी मुझे पहले खबर क्यों नहीं हुई ?

उसका उत्तर—ज्ञान तो तेरे पास है, उसमेंसे ही प्रगट होता है। प्रथम सामान्य शक्तिरूप (ध्रौव्यरूप) ज्ञान था वही विशेषरूपसे (पर्यायरूपसे) प्रगट हुआ है।

सामान्य ज्ञान जो त्रैकालिक शक्तिरूप है उसका जीव स्वीकार करे तो अपनी सामान्यशक्तिकी यह विशेष पर्याय होती है ऐसा मानेगा; परन्तु सामान्य ज्ञानको ही न माने, (अनुभवपूर्वक स्वीकार न करे) तो 'मेरा यह विशेष ज्ञान परमेंसे आया, गुरुकी प्राप्ति हुई अतः ज्ञान हुआ, ऐसे ज्ञानको जीव पराश्रित मानता है वह गलत है।

प्रत्येक द्रव्यमें गुणोंका गोदाम भरा है; उसीमेंसे पर्याय आती है। आत्मामें भी ज्ञान आदिका पूर्ण गोदाम भरा है, जिसमेंसे ही पर्याय आती है। पढ़नेसे ज्ञान हुआ यह बात झूठी है। ज्ञान जो शक्तिरूप है उसमेंसे ही विशेष ज्ञान प्रगट हुआ है।

विशेष ज्ञान अर्थात् ज्ञानकी वर्तमान पर्याय, विशेष आया कहाँसे ? वह जो त्रैकालिक सामान्यज्ञान विद्यमान है उसमें से ही आया है। अंदरके त्रैकालिक सामान्य ज्ञानकी जो प्रतीत करता है वह विशेष ज्ञानको परके अवलंबनसे नहीं मानता और अपनी जो विशेष पर्याय उसका भी अवलम्बन न मानकर अंदरके त्रिकाली ज्ञानका ही अवलम्बन मानता है।

त्रैकालिक सामान्य तो पूर्ण विद्यमान है, उसकी वर्तमान प्रगत पर्याय अल्प होने पर भी त्रिकाली सामान्य तो पूरा पूर्ण ही है। जिन्हें इस त्रैकालिक सामान्यकी श्रद्धा नहीं है वे विशेष निमित्तके अवलम्बनसे (प्रगट) हुआ है ऐसा मानते हैं।

यह तो दुकानदार जैसी युक्ति है, जिस प्रकार दुकानदार कहता है कि, भाई ! घरमें धन नहीं अतः दूसरेकी लाचारी झेलनी पड़ती है, दूसरेके पाससे रुपया ले तो व्याज देना पड़ता है फिर भी उससे कितना दबा रहना पड़ता है ! लेकिन जिसके पास पर्याप्त धन है वह दूसरेका बिलकुल दबा हुआ नहीं रहता। उसी प्रकार अपनेमें ज्ञानरूपी धन तो त्रैकाल पूर्ण ही है। जिसमें से पर्याय प्रगट होती है। जिन्हें अपने ज्ञानस्वभावकी प्रतीति (ज्ञान) है उन्हें निमित्तकी लाचारी नहीं रहती। निमित्तके अभावमें ज्ञानकी अल्पज्ञता नहीं है—परन्तु सामान्य शक्तिकी एकाग्रताके अभावमें अल्पज्ञता दृष्टिगोचर होती है। यदि त्रैकालिक शक्तिकी श्रद्धा करे तो उसमें एकाग्र होकर पूर्ण ज्ञानको प्राप्त कर ले। ज्ञानकी अवस्था निमित्तके कारण नहीं आई है परन्तु त्रैकालिक शक्ति विद्यमान है उसमेंसे आती है।

प्रश्न :—जैसे चाबीसे ताला खुलता है न ? ऐसे ही निमित्त आया तब ज्ञानकी पर्याय स्फुरित होती है न ?

उत्तर :—नहीं ! ताला खुलने वाला था तब चाबी आई, ऐसी बात उलटी है। (ताला चाबीकी तरह) निमित्त द्वारा ज्ञानकी पर्याय प्रगट नहीं हुई, परन्तु अंदरमें त्रैकालिक पदार्थ विद्यमान है उसमेंसे उस सामान्यका विशेष प्रगट हुआ है। ज्ञानकी पर्याय उपरसे नहीं आई परन्तु अंदरमें जो त्रैकालिक शक्ति विद्यमान है उसके आधारसे आती है। अंदरमें शक्ति विद्यमान है उसकी प्रतीति नहीं है अतः बाह्य

निमित्तसे ज्ञानकी पर्याय प्रगट हुई ऐसा अज्ञानी मानता है।

फुलझरीमेंसे जो फूल अंगार गिरते हैं वे फुलझरीमें ही सामर्थ्यरूपसे विद्यमान थे। उसी प्रकार आत्मामें ऐसा सामर्थ्य भरा है कि उसमें एकाग्रतारूपी चिनगारी लगानेसे तो शीघ्र निर्मल पर्यायके अंगार गिरते हैं।

ज्ञान वर्तमान अवस्थामें अल्पताके समय भी शक्तिमें पूर्ण है।



## 卐 उपदेशमें निमित्तका ज्ञान 卐

कहाँ चैतन्य भगवान आत्माका स्वभाव और कहाँ जड़ कर्मका स्वभाव। जीव अपने आत्माके स्वभावके सामर्थ्यका ज्ञान न करे और केवल जड़ कर्मको (कारण) माने तो बंधका नाश किसके बल पर करेगा ? जिसे कर्म प्रकृतिका लक्ष है उसे स्वभावकी प्रतीति नहीं है। जिसे अंदरमें स्वभावकी प्रतीति हुई और निमित्तका अवलम्बन छूट गया उसे भवका अभाव होता ही है। लेकिन केवल मात्र निमित्तका लक्ष करे और उपादानको न जाने तो उसकी मुक्ति नहीं होगी। यदि वह उपादानका लक्ष करे तो चैतन्य स्वभावकी श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसमें स्थिर होने पर बंधका नाश हो ही जाता है। मात्र बंधको जाननेसे या उसका विचार करने मात्रसे बंधन टूटता नहीं है।

× × × बंधके स्वरूपका ज्ञान मात्र बंधनसे छूटनेका कारण नहीं है। परन्तु बंधनसे मुक्त होनेके पूर्ण सामर्थ्यकी (स्वभावकी) दृष्टिका अवलम्बन ही बंधनकी मुक्तिका कारण है। × × × निकाचित कर्म भी जड़ हैं, वे आत्माके पुरुषार्थको रोकते नहीं हैं; जिस वीर्यने उल्टा होकर कर्मका बंधन किया, वही वीर्य जब सुलटा चलता है तब वह कर्मको क्षणमात्रमें तोड़ देता है। कर्म बड़े या तुम बड़े ? किसकी स्थिति अधिक ? प्रभु ! समस्त शक्ति तेरे पास विद्यमान है; परन्तु अनादिसे तुम परकी ही बात मान रहे हो; इसलिये स्वाश्रयकी प्रतीति नहीं की। शादीके अवसर पर घरमें 'भंगी खाना खा गये कि नहि' उस समय भंगीका स्मरण करता है लेकिन अपने भाईयोंने भोजन किया या नहि उन्हें स्मरण नहीं करता—यह कैसी



बात ? अपने भाईयोंको भूलकर भंगीका स्मरण करना पागलपन है। उसी प्रकार अनन्त गुणका पिंड जो भाई समान सदैव साथ रहनेवाला है वैसे चैतन्य भगवानका स्मरण नहीं करता, उसको नहीं पहिचानता और एक अल्प समय साथ रहनेवाले कर्मके साथ जिसने पहिचान की वे सब अज्ञानी ही हैं, मूर्ख ही हैं, वे मुक्ति प्राप्त नहीं करते।

तुझे जो निमित्तका ज्ञान बतलाया वह निमित्त (कर्म)का तेरे उपर बल बतानेको नहीं कहा है लेकिन निमित्ताधीन होता हुआ विकार तुम्हारा स्वरूप नहीं है ऐसा कहकर तुमको अपने पुरुषार्थ बढ़ानेके लिये कहा है तथापि तुम निमित्तका आश्रय लेकर रुक गया अब निमित्त कर्मकी दृष्टि छोड़कर। अपने स्वभावकी ओर दृष्टि कर ! भगवानका उपदेश धर्मवृद्धि हेतु होता है ऐसा न स्वीकार कर विपरीत मानता है उसे वीतरागकी वाणीके निमित्तका ज्ञान (भान) नहीं है।

“सर्व जीव धर्मको प्राप्त हों” ऐसी शुभ भावनावाले तीर्थंकर नामकर्मके उदयको प्राप्त वीतरागकी वाणी स्फुरित होती है वह स्वभाव धर्मकी वृद्धि हेतु होती है, उस ध्वनिमें ऐसा आता है कि भाई जागो-जागो तुम्हारी मुक्ति अल्पकालमें ही है। तेरा स्वभाव परिपूर्ण पुरुषार्थसे पूर्ण है।

निमित्त-उपादानकी संधि पृथक् नहीं होती इस हेतु यह उपदेश दिया गया है।



## 卐 अज्ञानी क्या समझे ? 卐

प्रत्येक वस्तुका कार्य अंतरंगकारणसे (उपादान कारणसे) होता है; बाह्य कारणसे (निमित्त कारणमें) कोई भी कार्य नहीं बनता। यदि बाह्य कारणसे कार्य होता हो तो धानके बीजमेंसे गेहूँ और गेहूँके बीजमेंसे चावल प्राप्त होनेका अवसर अयेगा—ऐसा होने पर वस्तुका (परिणमनका) कोई नियम नहीं रहेगा—अतः कहा है कि—

“कहीं पर भी अन्तरंग कारणसे ही कार्यकी उत्पत्ति होती है”

अर्थात् समान वस्तुओंमें कार्यकी उत्पत्ति अंतरंगकारणसे ही होती है (वस्तुकी अपनी शक्तिसे ही) ऐसा नियम है। इसमें अनेक प्रश्नोंके समाधान आ जाते हैं।

अंतरंगकारण = द्रव्यकी शक्ति, उपादानकारण

बहिरंगकारण = परद्रव्यकी उपस्थिति, निमित्तकारण।

कोई भी कार्य बाह्य पदार्थके कारण उत्पन्न नहीं होते यह निश्चय है। यदि बाह्यके कारण कार्यकी उत्पत्ति होती हो तो चावलमेंसे गेहूँ होना चाहिये। ऐसा कहीं भी नहीं होता। अतः किसी द्रव्यका कार्य दूसरे द्रव्यके कारण उत्पन्न ही नहीं होता परन्तु वह द्रव्यकी अपनी शक्तिसे ही होता है।

तीनकाल—तीनलोकमें ऐसा कोई द्रव्य नहीं कि जिस द्रव्यका कार्य दूसरे द्रव्यसे होता हो ! जो किसी भी द्रव्यका कार्य अन्य द्रव्यसे होता हो तो जीवमेंसे जड़ और जड़मेंसे जीव होनेका प्रसंग उपस्थित होगा; लेकिन कार्य और कारण एक ही द्रव्यमें होते हैं इस सिद्धान्त द्वारा प्रत्येक द्रव्यका कार्य उस द्रव्यके कारणसे स्वतंत्ररूप

होता है, अतः उपरोक्त दोष नहीं आता। इसमें प्रत्येक कार्य होनेमें उपादान निमित्तका स्पष्टीकरण आ जाता है।

अब उपर कहे अनुसार वस्तुस्वरूप होनेसे—आत्मद्रव्यका कार्य—अवस्था तो आत्माके ही अन्तरंगकारणसे उत्पन्न होती है। और आत्म द्रव्यमें तो वीतरागभाव प्रगट करनेका सामर्थ्य (शक्ति) है। वीतरागता—शुद्धतारूपी कार्य उत्पन्न हो ऐसी ही द्रव्यकी अन्तरंगशक्ति (स्वभाव) है।

प्रश्न :—द्रव्यकी अंतरंग शक्तिमें वीतरागता और शुद्धता ही प्रगट करनेकी शक्ति है तो फिर पर्यायरूपी कार्यमें अशुद्धता क्यों है ?

उत्तर :—पर्यायमें जो अशुद्धता है, वह पर्यायकी वर्तमान योग्यतासे है। आत्माका स्वभाव अरूपी ज्ञानघन है—जो अंतरंगकारण है (उसके आलंबनसे) बाह्य निमित्त या संयोग किसी भी प्रकारके हो तथापि ज्ञान और वीतरागता ही प्रगट होती है। तथापि पर्यायमें जो विकार—अशुद्धता है वह (स्वभावका आलंबन न लेनेरूप—पराश्रयरूपी) पर्यायके अंतरंग कारणसे है। विकारका अन्तरंगकारण एक समयकी अज्ञानमय पर्याय है अतः विकाररूपी कार्य भी एक समयका है। प्रथम समयका विकार दूसरे समय बदल जाता है। रागादिविकाररूप अवस्था वह पर्यायके अंतरंग कारणसे है, रागादिका अंतरंग कारण द्रव्य स्वभाव (स्वभावका अवलंबन) नहीं तथापि अज्ञानतारूप अवस्था है, द्रव्यस्वभावमें रागादि नहीं होता अतः द्रव्य (स्वभाव) रागादिका कारण नहीं है।

चेतन द्रव्यकी अवस्था जैसे चेतनके अंतरंग कारण द्वारा होती है, उसी प्रकार जड़ द्रव्यकी अवस्था भी जड़ द्रव्यके अंतरंगकारणसे

ही होती है। शरीरके परमाणु एकत्र होते हैं, वे आत्माके कारणसे नहीं आये हैं, परन्तु जिन-जिन परमाणुओंकी अंतरंगशक्ति थी वही परमाणु एकत्र हुए हैं, दूसरे परमाणु पेशाब, विष्टा द्वारा पृथक् हो जाते हैं। परमाणुओंमें क्रोध-कर्मरूप अवस्था होती है वह परमाणुकी उस समयकी योग्यता है—जीवने वह अवस्था नहीं की। जीवकी क्रोधादि भावरूप अवस्था होती है उसमें जीवकी उस समयकी अवस्थाकी योग्यता होती है। जीवकी अवस्थामें विकारीभाव और पुद्गलकी अवस्थामें कर्मरूप परिणमन यह दोनों स्वयं अपने अंतरंग स्वतंत्र कारणसे होते हैं। एक-दूसरेका कोई अंतरंग कारण नहीं है।

समय समय पर अवस्थाका होना वह वस्तुका स्वभाव है, वस्तुकी अवस्था वस्तुके कारणसे होती है। बाह्य साधनके कारण कोई अवस्था होती नहीं। इसलिये अपनी अवस्थाका अच्छा-बुरा द्रव्य स्वयं ही कर सकता है। चैतन्यकी पर्याय चैतन्यरूप रहकर परिणमित होती है और जड़की पर्याय जड़रूप रहकर परिणमित होती है। दूसरा कोई किसी भी द्रव्यकी अवस्थाका कर्ता नहीं है।



पर द्रव्योंको आत्मा करता है ऐसी व्यवहारी जनोंकी मान्यता सत्यार्थ नहीं है—ऐसा कहते हैं—

जदि सो परदव्वाणि य करेज्ज णियमेण तम्मओ होज्ज।

जम्हा ण तम्मओ तेण सो ण तेसिं हवदि कत्ता॥१९॥

(हरीगीता)

परद्रव्यने जीव जो करे तो जरूर तन्मय ते बने;

पण ते नथी तन्मय अरे! तेथी नहीं कर्ता ठरे. १९.

**अन्वयार्थ**—जो आत्मा परद्रव्यको करे तो वह नियमसे तन्मय अर्थात् परद्रव्यमय हो जाये, वह तन्मय नहीं है अतः वह उसका कर्ता नहीं है।

**टीका**—निश्चयसे जो यह आत्मा परद्रव्य स्वरूप कर्मको करता है तो परिणाम परिणामीपना दूसरे प्रकारसे नहीं बन सकता होनेसे वह (आत्मा) नियमसे तन्मय (पर द्रव्यमय) होता है, परन्तु वह तन्मय तो नहीं है। क्योंकि कोई द्रव्य अन्य द्रव्यमय हो जाये तो उस द्रव्यके विनाशकी (आपत्ति) दोष आता है। अर्थात् आत्मा व्याप्य-व्यापकभावसे परद्रव्यस्वरूप कर्मका कर्ता नहीं है ॥९९॥

**भावार्थ**—एक द्रव्यका कर्ता अन्य द्रव्य हो तो दोनों द्रव्य एक हो जाय, क्योंकि कर्ता-कर्मपना अथवा परिणाम-परिणामीपना एक ही द्रव्यमें हो सकता है। इस प्रकार जो एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप हो जाय तो द्रव्यका नाश हो जायेगा-ऐसा महान दोष आयेगा, अतः एक द्रव्यको अन्य द्रव्यका कर्ता कहना योग्य नहीं है।

यह आत्मा परद्रव्यका कार्य किंचित् भी कर सकता नहीं। यदि आत्मा परद्रव्यका कुछ भी करे तो वे दोनों द्रव्य एक हो जाये तथापि एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कुछ कर नहीं सकता क्योंकि प्रत्येक द्रव्य त्रिकाल भिन्न हैं।

एक आत्मा परका करे तो वह परद्रव्य और आत्मा दोनों एक हो जाते हैं क्योंकि जिस समय आत्माने परद्रव्यका कुछ भी किया उसी समय सन्मुख द्रव्यकी स्वतंत्र अवस्था नहीं रहती अर्थात् अवस्थाका लोप होनेपर उस द्रव्यका लोप हुआ क्योंकि अवस्थाके बिना कोई द्रव्य रहता नहीं। इस प्रकार जीव जो परवस्तुकी अवस्था करता है तो वह परद्रव्यके साथ एकमेक हो जाता है, और वह

द्रव्यके लोपका प्रसंग आता है, लेकिन तीनकालमें ऐसा नहीं होता।

प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक रजकण स्वतंत्र पदार्थ हैं। आत्माकी अवस्था आत्मासे होती है और जड़की अवस्था जड़से होती है—ऐसा मानना ही प्रथम धर्म है।

आत्मा किसी वस्तुमें प्रवेश नहीं करता। आत्मा शरीरमें प्रविष्ट नहीं हुआ है। शरीर जड़ है और आत्मा चेतन है। शरीर और आत्मा यह त्रैकालिक भिन्न पदार्थ हैं। शरीरकी अवस्था रूप, रस, गंध, स्पर्श सहित जड़रूप होती है और आत्माकी अवस्था ज्ञानरूप होती है—दोनों द्रव्य तथा उनकी अवस्थायें भिन्न ही हैं।

प्रश्न :—आत्मा यदि परका कुछ भी कर सकता है ऐसा मानें तो क्या आपत्ति है ?

उत्तर :—एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कुछ भी कर सकता है ऐसा माने तो द्रव्यके नष्ट होनेका प्रसंग आता है और ऐसा महान दोष आता है। अनन्त पदार्थ जगतमें हैं, जैसे आत्मा वस्तु है तथा सन्मुख द्रव्य पर वस्तु है। वस्तु समय समय पर अपनी अवस्थाका कार्य करती है। यदि आत्माने उस द्रव्यका कुछ किया ऐसा माननेमें आये तो उस समय—सन्मुख द्रव्यने अपनी अवस्थामें क्या किया ? क्योंकि सन्मुख द्रव्य सामान्य स्वरूप है उसका विशेष भी प्रत्येक समय होना ही चाहिये। अब आत्मा जो उस द्रव्यकी अवस्थाको करता है तो उस समय सन्मुख द्रव्यसे अपनी क्या अवस्था हुई ? अवस्थाके बिना द्रव्य हो ही नहीं सकता, अतः आत्माने उस द्रव्यकी अवस्थामें कुछ भी नहीं किया। प्रत्येक द्रव्य अपने स्वरूपसे त्रिकाल रहकर क्षण-क्षणमें अपनी अवस्था स्वयंसे बदलता है। उसमें दूसरा द्रव्य किंचित् मात्र भी कुछ नहीं कर सकता। यदि एक

द्रव्यकी अवस्था दूसरा द्रव्य करे ऐसा माना जाये तो उस समय उस द्रव्यकी विशेष अवस्था नहीं रहती और विशेष अवस्था रहित द्रव्यकी सत्ताका ही अभाव होनेका प्रसंग आता है—यह महान दोष आता है—अतः एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कुछ करे ऐसा मानना वह द्रव्यके त्रैकालिक स्वरूपकी हिंसा है, जगतमें इससे बडा कोई पाप नहीं है। परद्रव्यका मैं कर दूँ—ऐसा मानना वह महान हिंसा है, वह महान पाप है। बाह्यमें प्राणी मरे या दुःखी हो उसमें हिंसा नहीं है परन्तु मैं प्राणीको सुखी-दुःखी कर सकता हूँ ऐसी झूठी मान्यता ही अपने ज्ञानस्वभावकी हिंसा है; उसमें मिथ्यात्वभावका अनन्त पाप है। और मैं परका कर सकता हूँ ऐसी उल्टी मान्यता छोड़कर “मैं आत्मा ज्ञानस्वरूप हूँ, परद्रव्यका मैं कुछ भी कर नहीं सकता, प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है, सब अपने अपने कर्ता हैं ऐसा मानना ही अहिंसा है और वही प्रथम धर्म है।

प्रश्न :—शरीर आत्माके द्वारा चलाया जाता है और मनुष्य पर्वतके पर्वत तोड़ डालते हैं यह सब दृष्टिसे स्पष्ट दिखता है। तथापि आत्मा परका कुछ भी नहीं कर सकता ऐसा क्यों कहते हो ? जो हमें प्रत्यक्ष दिखाई देता है वह गलत है ?

उत्तर :—आत्मा क्या और शरीर क्या ? उन दोनोंकी भिन्नताके ज्ञानरहित आत्माने क्या क्या किया उसकी अज्ञानीको कहाँ प्रतीत होती है। वह आत्माको देखता नहीं, मात्र बाह्यमें जड़ स्थूलकी क्रियाको ही देखता है। वहाँ आत्मा उस जड़की क्रिया करता है ऐसा दिखता नहीं, तथापि अज्ञानी व्यर्थमें ऐसा मान लेता है और कहता है कि मैंने दृष्टिसे देखा है परन्तु दृष्टि से क्या देखा ? दृष्टिमें जो जड़ वस्तुकी क्रिया स्वयमेव होती है वह दिखती है। परन्तु ‘घोडेके

अंडे'की तरह आत्माने किया ऐसा वह मानता है। वह घोड़ेके अंडेका द्रष्टांत निम्नानुसार है :—

एक समय एक ठाकुर घोड़ेके बच्चोंको लेनेके लिये निकले। ठाकुर जीवनमें कभी बाहर निकले ही नहीं थे। अतः उन्हें कुछ ज्ञान भी नहीं था; वह एक गाँवसे दूसरे गाँव घोड़ेके बच्चोंको खरीदने जा रहे थे। वहाँ मार्गमें उन्हें ठग मिले। उन्होंने बात-बातमें जान लिया कि इस ठाकुरको कुछ भी अनुभव नहीं है और घोड़ेके बच्चे खरीदनेको निकल पड़ा है। उन्होंने (ठगोंने) ठाकुरको मूर्ख बनानेका निर्णय कर लिया और दो बड़े कट्टे लेकर एक वृक्ष पर बाँध दिये। उस वृक्षके पास एक कौनेमें सस्सेके दो बच्चें रहते थे। ठगोंने ठाकुरसे बातकी मेरे पास घोड़ेको दो सुन्दर अंडे हैं—उनमेंसे अच्छे सुन्दर बच्चे उत्पन्न होंगे—ऐसा कहकर अपना सौदा किया और दोका मूल्य एक हजार रुपये ले लिये। वृक्ष पर बाँधे हुए दोनों कुट्टे नीचे गिरे और उनके फटने पर आवाज निकली। उस आवाजको सुनकर झाडीमें रहे दो खरगोशके बच्चें दौड़ने लगे, वहाँ ठग हाथसे आवाजकर कहने लगे कि इन्हें पकड़ो, पकड़ो यह घोड़ेके बच्चें भाग रहे हैं। जल्दी करो वरन् सुन्दर बच्चे भाग जायेंगे। ठाकुर बात सच मानकर घोड़ेके बच्चे मानकर पकड़नेको दौड़े, परन्तु वे कहाँ छिप गये। घर आकर ठाकुरने अपनी बैठकमें बातकी क्या घोड़ेके बच्चे छोटे-छोटे और सुन्दर निकलते ही शीघ्र दौड़ने लगे ! तब बैठकने पूछा क्या हुआ ठाकुर ? तब ठाकुरने 'घोड़ेके अण्डे' खरीदने सम्बन्धी बात की, तब बैठकके मनुष्योंने कहा, भाई ! तुम मूर्ख बन गये, घोड़ेके अंडे नहीं होते। तब ठाकुर कहते हैं कि—मैंने अपनी आँखोंसे देखा है। परन्तु घोड़ेके अण्डे होते ही नहीं तो तुमने अपनी आँखोंसे कैसे देखे ? तुम्हारी देखनेकी भूल है ऐसा



अज्ञानी जीव कहता है कि “जीव परका करता है ऐसी दृष्टिके सामने दिखता है” परन्तु भाई ! जीव परका कुछ कर ही नहीं सकता तो तुमने दृष्टिसे क्या देखा ? दृष्टिसे तो जड़की क्रिया दिखाई देती है। आत्माने किया ऐसा तो दिखाई ही नहीं देता। देखो ! हाथमें यह लकड़ी है वह ऊँची हुई—अब आत्माने उसमें क्या किया ? प्रथम लकड़ी नीचे थी फिर ऊँची हुई—ऐसा आत्माने जाना है, परन्तु आत्मामें सामर्थ्य नहीं है कि वह लकड़ीको ऊँचा कर दे। अज्ञानी जीव भी “लकड़ी ऊँची हुई” ऐसा जानता है, परन्तु मैंने यह लकड़ी ऊँची की” ऐसा मानकर नजर समक्ष दिखता है, उससे विपरीत मानता है।

प्रश्न :—हाथ तो आत्माने हिलाया तब हिला है न ?

उत्तर :—हाथ तो जड़ है—चमड़ा है, वह कोई आत्मा नहीं है। आत्मा और हाथ दोनों पदार्थ भिन्न—भिन्न हैं। आत्मा हाथका कुछ कर नहीं सकता। आत्मा हाथका कर सकता है ऐसा मानना वह चमड़ेको अपना माननेरूप चोरी है—हिंसा है—महान पाप है।

(१) एक आत्मा दूसरे आत्माका कुछ कर सकता है अथवा

(२) एक आत्मा जड़का कुछ कर सकता है अथवा

(३) एक पुद्गल दूसरे पुद्गलका कुछ कर सकता है अथवा

(४) एक पुद्गल आत्माका कुछ कर सकता है ऐसा मानना महान हिंसा है, उसके समान महान पाप संसारमें दूसरा नहीं है, इस हिंसाका फल जन्म—मरणकी जेल है।

जो जीव, एक भी परद्रव्यका आत्मा कुछ कर सकता है ऐसा मानता है वह ऐसे ऐसे अनंत परद्रव्य हैं उनका भी आत्मा कर सकता

हैं ऐसा मानता है। ऐसे अनन्त परद्रव्योंके कर्तृत्वका महा अहंकार उल्टी (विपरीत) मान्यतामें आया, जैसे स्वयं परद्रव्यका कर सकता है उसी प्रकार परद्रव्य अपना कर सकते हैं ऐसी विपरीत मान्यतामें माना उसने स्वयंको पुरुषार्थहीन परद्रव्यके आधीन माना है—इस प्रकार दोनों तत्त्वोंको पराधीन माने हैं यही तत्त्वकी हिंसा है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कुछ भी कर सकता है ऐसा मानना ही अपने स्वाधीन स्वरूपकी हिंसा है। और पराधीनपनेकी विपरीत मान्यताका त्रिकाली पाप एक समयकी मान्यतामें है तथा “परद्रव्यका मैं कुछ भी नहीं कर सकता हूँ और परद्रव्य मेरा कुछ नहीं कर सकता है। प्रत्येक तत्त्व स्वतंत्र स्वाधीन परिपूर्ण है, सत् स्वरूप है, किसी भी तत्त्वको दूसरेका अवलम्बन नहीं है ऐसे प्रत्येक पदार्थकी स्वतंत्रता मानना उससे त्रैकालिक सत्का स्वीकार है। स्वतंत्र सत् स्वरूपका—आदर है, यही धर्म है।

प्रश्न :—आत्मा तो अनन्त शक्तिवाला है, वह परका कुछ भी नहीं कर सके ऐसा पुरुषार्थ हीन नहीं है। जो आत्मा परका कुछ भी नहीं कर सके तो उसे अनंत शक्तिवाला क्यों कहा जाता है ?

उत्तर :—आत्मा अनंत शक्तिवान है यह बात सच्च है, परन्तु आत्माकी अनन्त शक्तियाँ आत्मामें ही हैं, परमें आत्माकी शक्ति नहीं होती। आत्मा चेतन पदार्थ है, और ज्ञान, दर्शन, आनंद, पुरुषार्थ आदि अनन्त चैतन्य शक्तियाँ उसमें विद्यमान हैं, परन्तु उन शक्तियोंसे आत्मा परका कुछ भी नहीं कर सकता। परका कुछ करनेके लिये आत्मा बिलकुल शक्तिरहित है। अर्थात् आत्माकी परद्रव्यपने नास्ति है अतः वह परसे कुछ नहीं कर सकता। परद्रव्य स्वतंत्र है उसमें आत्माकी शक्ति प्रविष्ट होकर कुछ नहीं कर सकती है। आत्माकी

समस्त शक्तियाँ आत्मामें चलतीं हैं। आत्मामें ऐसी अनन्त शक्तियाँ हैं जो सीधे भावसे आत्मा क्षणमात्रमें केवलज्ञान प्राप्त करता है और अपने विपरीत भावसे क्षणमें सातवीं नरकमें चला जाता है, ऐसी आत्माकी अनन्त शक्ति आत्मामें ही कार्य करती है, परमें कुछ भी नहीं करती।

प्रत्येक तत्त्व स्वयं अपने परिणामको धारण करनेवाला है अर्थात् प्रत्येक वस्तु स्वयं ही अपनी अवस्थाको धारण करती है। वस्तु वह परिणामी है और अवस्था उसका परिणाम है, परिणामी और उसका परिणाम अर्थात् वस्तु और वस्तुकी अवस्था दोनों भिन्न नहीं होते—ऐसा वस्तुका स्वभाव है; तथापि जो जीव परद्रव्यके परिणाम में कर सकता हूँ ऐसा मानता है वह वस्तुस्वरूपका—विश्वधर्मका हनन करता है। (वस्तुस्वरूप तो जैसा है वैसा ही है, वस्तुस्वरूप अलग नहीं होता। केवल अज्ञानी अपने भावमें विपरीत मान्यता करता है, विपरीत मान्यता ही संसारका कारण है।)

परिणामी और परिणाम अभेद होते हैं; परिणाम एक द्रव्यमें होता हो और उसे परिणामन करानेवाला दूसरा द्रव्य हो ऐसा कभी संभव ही नहीं है। एक द्रव्यके परिणाम दूसरे द्रव्यके परिणाममें प्रभाव या सहायता नहीं कर सकते हैं। जीवको दान देनेका शुभभाव हो उसके कारण दूसरेका हित हो जायेगा अथवा हिंसादिके अशुभभाव आने पर दूसरेका अहित हो जायेगा—ऐसा नहीं है, क्योंकि जीवके परिणामोंका फल स्वयंमें है, परमें नहीं, परद्रव्यकी अवस्था उसमें ही विद्यमान है—ऐसा होनेके कारण मैं मेरी अवस्था करूँ, परद्रव्य उसकी अवस्था करे, मैं परका न करूँ, पर मेरा न करे ऐसी प्रथम मान्यता होने पर तो जीवको अनन्ति शांति प्रगट होती है और

अनंत राग-द्वेष दूर हो जाते हैं। यह मान्यता ही सबसे पहला धर्म है। ऐसी मान्यता करनेमें अनन्त पर पदार्थोंका अहंकार दूर होकर अनन्त पुरुषार्थ प्रगट होता है। “मैं शुद्ध ज्ञायक स्वरूपी आत्मा हूँ, ज्ञानके अतिरिक्त परद्रव्यका किंचित् मैं कर नहीं सकता”—ऐसी जहाँ तक सम्यक् मान्यता नहीं होती वहाँ तक आत्माकी सम्यग्ज्ञानरूपी कला प्रगट नहीं होती। सम्यग्ज्ञान कला ही धर्म है। “मैं परद्रव्यके कर्तृत्वरहित, परसे भिन्न, ज्ञायकस्वरूप स्वतंत्र द्रव्य हूँ ऐसी जिसको अपनी स्वतंत्रता स्वीकृत होती वह दूसरे द्रव्योंको भी स्वतंत्र नहीं मानता, और जहाँ द्रव्यको स्वतंत्र नहीं मानता वहाँ परद्रव्यका मैं कर दूँ और परद्रव्य मेरा कर दे ऐसा मानकर द्रव्यको पराधीन मानता है और जिस जीवको स्वतंत्रताका स्वीकार हुआ है वह अन्य द्रव्योंको भी स्वतंत्र जानता है। अतः वह अपनेको परका कर्ता नहीं मानता। अर्थात् उसे अन्य परपदार्थोंका अहंकार दूर हो जाने पर अपने स्वभावकी अनन्ती प्रतीति हो जाती है—यही धर्म है, यही स्वाधीनताका मार्ग है।



## कार्य होनेमें उपादान-निमित्त कितने प्रतिशत ?

प्रश्न :—आत्माके विकार भावमें कर्म निमित्तरूप तो है न ? कर्म निमित्त है अतः ५० प्रतिशत कर्म करायें और ५० प्रतिशत आत्मा करता है इस प्रकार दोनों मिलकर विकार करते हैं ? शास्त्रोंमें ऐसा आता है कि कार्यमें उपादानकारण और निमित्तकारण दोनों होते हैं—अतः दोनोंने ५०-५० प्रतिशत कार्य किया ?

उत्तर :—‘निमित्त है’ यह बात ठीक है, परन्तु कार्य ५० प्रतिशत निमित्तसे होता है और ५० प्रतिशत उपादानसे होता है यह बात तीन काल तीनलोकमें सर्वथा झूठी है; कार्यमें निमित्तका एक भी प्रतिशत नहीं है। उपादान शतप्रतिशत उपादानमें और निमित्तका शतप्रतिशत निमित्तमें है। किसीका एक भी प्रतिशत एकदूसरेमें नहीं जाता। दोनों द्रव्य स्वतंत्र हैं दोनों द्रव्य मिलकर—एकरूप होकर कोई कार्य कर ही नहीं सकते, क्योंकि दोनों सर्वथा भिन्न हैं। दो द्रव्योंसे ५०-५० प्रतिशत कार्य होना माना जाये तो दो द्रव्य एक होकर कार्यरूप परिणमित होने चाहिये—परन्तु यह तो असंभव है। कार्यरूप उपादान स्वयं एक ही परिणमित होता है। वहाँ निमित्त पृथक् उपस्थित होता है। निमित्त वस्तु उपादानके कार्यरूप किंचित्मात्र भी परिणमित नहीं होती। जो स्वयं कार्यरूप परिणमित ही नहीं होता वह कर्ता कैसे कहा जाता है ? कार्यरूप जो द्रव्य होता है वही द्रव्य १०० प्रतिशत उसका कर्ता होता है। उपादान-निमित्तकी परिभाषा निम्नप्रकार है—

उपादान :—जो पदार्थ स्वयं कार्यरूप परिणमित होता है उसे उपादानकारण कहते हैं।

निमित्त :—जो पदार्थ स्वयं कार्यरूप परिणमित नहीं होता परन्तु उपादान कार्यकी उत्पत्तिमें अनुकूल-उपस्थितिरूप होता है उसे निमित्तकारण कहते हैं।

इसमें स्पष्ट है कि उपादान अकेला ही कार्यरूप परिणमित होता है, निमित्त कार्यरूपसे (परमें) परिणमित नहीं होता। जो कार्यरूप परिणमता है वही कारण है-ऐसा नियम है। भगवान श्री अमृतचंद्राचार्यदेव समयसारकी टीकामें स्पष्ट कहते हैं कि—

१. “जो परिणमित होता है वह कर्ता है, (परिणमित होनेवालेका) जो परिणाम है वह कर्म है और जो परिणति है वह क्रिया है; यह तीनों वस्तुरूपसे भिन्न नहीं है। [कलश-५१]

[कर्ता कर्म भिन्न नहीं होते, परन्तु उपादान-निमित्त तो पृथक्-पृथक् होते हैं, अतः उपादान निमित्तको कोई कर्ता-कर्म सम्बन्ध नहीं है।]

२. “वस्तु एक ही सदैव परिणमित होती है; एकके ही सदैव परिणाम होते हैं। (अर्थात् एक अवस्थाकी दूसरी अवस्था एककी ही होती है) और एककी ही परिणति क्रिया होती है; क्योंकि अनेकरूप होने पर भी वस्तु एक ही है, भेद नहीं है। [कलश-५२]

एक ही वस्तु अवस्थारूप होती है। जो वस्तु अवस्थारूप होती है वही वस्तु कर्ता है, अन्य वस्तु नहीं।

३. “दो द्रव्य एक होकर परिणमित नहीं होते, दो द्रव्योंका एक परिणाम नहीं होता और दो द्रव्योंकी एक परिणति-क्रिया नहीं होती; क्योंकि अनेक द्रव्य हैं वे पृथक् ही हैं, पलटकर एक नहीं हो जाते” [कलश-५५]

प्रत्येक वस्तु भिन्न-भिन्न है, कदापि दो वस्तुएँ एक नहीं होतीं। और दोनों वस्तुएँ पृथक् होनेसे दोनोंके कार्य भिन्न ही हैं। यदि कार्यको दो वस्तुएँ मिलकर करें तो वस्तु भिन्न नहीं रहती अर्थात् वस्तुके नाशका प्रसंग आता है, वह असम्भव है।

४. “एक द्रव्यके दो कर्ता नहीं होते, तथा एक द्रव्यके दो कर्म नहीं होते और एक द्रव्यकी दो क्रियाएँ नहीं होती क्योंकि एक द्रव्य अनेक द्रव्यरूप नहीं होता। [कलश-५४]

दो द्रव्य भिन्न-भिन्न रहकर एक कार्य करें-ऐसा भी संभव नहीं है क्योंकि एक कार्यके दो कर्ता हो ही नहीं सकते।

५. “इस जगतमें मोही (अज्ञानी) जीवोंका “परद्रव्यका मैं कर्ता हूँ” ऐसा परद्रव्यके कर्तृत्वका महा अहंकाररूप अज्ञानांधकार-कि जो अत्यंत दुर्निवार है वह अनादि संसारसे चला आ रहा है [कलश ५५]

६. “निश्चयसे द्विक्रियावादी (अर्थात् एक द्रव्यको दो क्रियाएँ होती हैं ऐसा माननेवाले) आत्माके परिणामको और पुद्गलके परिणामको स्वयं (आत्मा) करता है ऐसा मानते हैं, वे मिथ्यादृष्टि ही हैं ऐसा सिद्धान्त है [गाथा ८६ टीका]

७. आत्मा अपने ही परिणामको करता प्रतिभासो वह पुद्गलके परिणामको करता कभी भी न प्रतिभासो। आत्मा और पुद्गलकी-दोनोंकी क्रिया एक आत्मा ही करता है ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। जड़-चेतनकी क्रिया एक हो तो सर्व द्रव्य पलट जानेसे सर्वका लोप हो जायेगा—यह बड़ा दोष उत्पन्न होगा।

[गाथा-८६ भावार्थ]

[ श्री समयसारजीका पूरा कर्ता-कर्म अधिकार इसी विषय पर है। ]

उपरोक्त कथनसे यह सिद्धान्त स्पष्टरूपसे निश्चित होता है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कुछ भी नहीं कर सकता। उपादान और निमित्त यह दोनों पृथक् द्रव्य हैं अतः वह एक दूसरेमें कुछ भी कार्य-सहायता या प्रभाव नहीं कर सकते। निमित्त यदि उपादानका ५० प्रतिशत कार्य कर देता हो तो उपादानको निमित्तकी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी अर्थात् एक द्रव्यको अपने कार्य हेतु ५० प्रतिशत आवश्यकता होगी-इसप्रकार वस्तुकी पराधीनता सिद्ध होगी, लेकिन वस्तुके स्वरूपमें पराधीनता नहीं है। वस्तु स्वाधीनरूपसे अपना कार्य करती है।

कोई निमित्तकी ऐसी भी परिभाषा करते हैं—

“अपने अस्तित्वकालमें उपादानकारणके रहते हुए, उपादानकारणको कार्यरूप परिणत करा दे उसका नाम सहकारी-कारण अर्थात् निमित्तकारण है”

—ऐसी निमित्तकी परिभाषा वह बिलकुल झूठी (-गलत) है यह बात उपरके कथनसे सिद्ध होती है। यदि निमित्तकारण स्वयंमें रहकर उपादानको कार्यरूप परिणमित करावे तो वह निमित्त स्वयं कर्ता सिद्ध होगा, तो फिर उपादान द्रव्यने अपनी अवस्थामें क्या किया ? उस समय क्या उपादान कार्य रहित रहा ? जो कार्यमें अभाव माननेमें आये तो कार्यरहित कारणका (उपादानका) भी अभाव हो जाता है.....अतः महान् दोष आता है।

उपादानका कार्य ५० प्रतिशत और निमित्तका ५० प्रतिशत ऐसा भी नहीं है, क्योंकि पर्यायरूप उपादान द्रव्य ही परिणमित होता है, निमित्तका कोई भी अंश उपादानमें कार्यरूप परिणमित नहीं



होता। वस्तुकी शक्तियाँ परकी अपेक्षा नहीं रखती हैं। उपादान वस्तु स्वयं अपनी शक्तिसे कार्यरूप परिणमित होती है अतः उसे किसी भी परिणमित करनेवालेकी जरूरत नहीं है। अर्थात् उपादान स्वयं अपने स्वतंत्ररूप १०० प्रतिशत कार्य करता है और निमित्त-निमित्तमें १०० प्रतिशत कार्य करता है, परन्तु उपादानमें निमित्त १भी प्रतिशत कार्य नहीं कर सकता है। इस प्रकार दोनों वस्तुएँ सम्पूर्ण स्वाधीन हैं।

पर्यायको (पर्यायार्थिकनयसे द्रव्यको) उपादान कहने सम्बन्धी :—

प्रश्न :—द्रव्य (स्वभाव) ही उपादानकारण हो सकता है, पर्याय (पर्याययुक्त द्रव्य) नहीं यह मान्यता ठीक है ?

उत्तर :—उपादानकारण पर्याय (युक्त द्रव्य) नहीं होती, परन्तु द्रव्य (स्वभाव) ही उपादानकारण हो सकता है—यह मान्यता ठीक नहीं है। द्रव्यार्थिकनयसे उपादानकारण द्रव्य है यह बात ठीक है, क्योंकि प्रत्येक पर्याय द्रव्य और गुणका ही परिणमन है। वह यह स्पष्ट करता है कि यह पर्याय इस द्रव्यकी है। दृष्टान्त—मिट्टीमें सदैव घड़ेरूप होनेकी योग्यता है ऐसा बताना द्रव्यार्थिकनयका कथन है। अर्थात् मिट्टीका घड़ा मिट्टीमेंसे ही हो सकता है, दूसरे द्रव्यमेंसे नहीं हो सकता। परन्तु जब पर्यायार्थिकनय द्वारा अर्थात् जब (द्रव्यमें) पर्यायकी योग्यता (पर्याय अपेक्षासे) प्रदर्शित करनी हो तब प्रत्येक समयकी पर्यायकी (उस द्रव्यके परिणमनकी) योग्यता वह उपादानकारण है और वह पर्याय स्वयं कार्य है। सूक्ष्मतासे विचार किया जाये तो कारण-कार्य एक ही समयमें होते हैं। (देखो, तत्त्वार्थसार मोक्ष अधिकार गाथा ३५ तथा अर्थ पृष्ठ ४०७) इसका

अर्थ होता है कि प्रत्येक समय पर प्रत्येक द्रव्यमें एक ही पर्याय होनेकी योग्यता होती है, परन्तु पूर्व समयकी या भविष्यकी पर्यायमें वह योग्यता नहीं होती। यह कथन पर्यायार्थिक नयसे समझना !

इस सम्बन्धमें श्री प्रवचनसार अ. २ गाथा ७की श्री अमृतचन्द्राचार्यकृत टीका बहुत उपयोगी है। उसमें अन्तिम चार पंक्ति (पृष्ठ १३५-३६) अभ्यास करने योग्य है। उसमें लिखा है कि 'तथैव हि परिगृहीत नित्यवृत्तिनिवर्तमाने द्रव्ये समस्तेष्वपि स्वावसरेषूच्चकासत्सुपरिणामेषूत्तरोत्तरेष्ववधूत्ततरपरिणामानुदयनात्पूर्वपूर्व-परिणामानामनुदयनात् सर्वत्रापि परस्परानुस्यूतिसूत्रकस्य प्रवाहस्यावस्थानात्त्रैलक्षण्यं प्रसिद्धिमवतरति।' उसका गुजराती अर्थ इस प्रकार हैं (गुजराती प्रवचनसार १६६)

जिसने नित्यवृत्ति ग्रहण की है ऐसे रचे जानेवाले (परिणमत द्रव्यके विषयमें लिये, अपने-अपने समय पर प्रकाशित) समस्त परिणामोंमें (अवसर पर पीछे-पीछेके परिणाम प्रगट होनेसे और पहले-पहलेके परिणाम प्रगट नहीं होनेसे और सर्वत्र समस्त परस्पर अनुस्यूति रचनेवाला प्रवाह अवस्थित (स्थिर) होनेसे त्रिलक्षणपना प्रसिद्ध होता है।

तथा श्री प्रवचनसार अध्याय १ गाथा ८की संस्कृत टीकामें पृष्ठ १० पर श्री जयसेनाचार्यने कहा है कि--'तच्च पुनरुपादान कारणं शुद्धाशुद्धभेदेन द्विधा। रागादिविकल्परहितस्वसंवेदनज्ञानमागमभाषया शुक्लध्यानं वा केवलज्ञानोत्पत्तौ शुद्धोपादनकारणं भवति। अशुद्धात्मा तु रागादिनामशुद्धनिश्चयेनाशुद्धोपादानकारणं भवतीति सूत्रार्थः॥'' उसका अर्थ इस प्रकार है।

पुनश्च वह उपादानकारण भी शुद्ध और अशुद्ध ऐसे दो

प्रकारका है। रागादि विकल्प रहित स्वसंवेदन ज्ञान अथवा आगम भाषामें शुक्लध्यान वह केवलज्ञानकी उत्पत्तिका शुद्ध उपादानकारण है और रागादिरूप परिणमता अशुद्ध आत्मा अशुद्ध निश्चयसे अशुद्ध उपादानकारण है। ऐसा सूत्रार्थ है। यहाँ शुद्ध और अशुद्ध पर्याय (परिणत द्रव्य) दोनोंको उपादानकारण कहा है।

नोंध : (यह टीका सोनगढसे प्रकाशित समयसारमें नहीं है)

तथा श्री समयसार गाथा १०२नी टीकामें श्री जयसेनाचार्यदेव कहते हैं कि (पृष्ठ १६७-८) -- 'हे भगवन् रागादिनामशुद्धोपादानरूपेण कर्तृत्वं भणितं तदुपादानं शुद्धाशुद्धभेदेन कथं द्विधा भवतीति । तत्कथ्यते-- औपाधिकमुपादानमशुद्धम् तप्ततायः पिंडवत्, निरुपाधिरूपमुपादानं शुद्धं पीतत्वादिगुणानां सुवर्णवत् अनंतज्ञानादिगुणानां सिद्धजीववत् उष्णत्वादि गुणानामग्निवत् । इदं व्याख्यानमुपादानकारणाव्याख्यानकाले शुद्धाशुद्धोपादानरूपेण सर्वत्र स्मरणीयमिति भावार्थः ।' उसका गुजराती भावार्थ इस प्रकार है—यहाँ शिष्य पूछता है कि हे भगवान ! जीवको रागादिका कर्ता अशुद्ध उपादानके रूपमें कहा है तब तो उपादान शुद्ध और अशुद्ध ऐसे भेदसे दो प्रकारका किस प्रकार है ? श्रीगुरु उसका समाधान करते हैं—तप्त लोहेके गोलेकी तरह जो औपाधिक उपादान है वह अशुद्ध उपादान है, और जैसे सोनेमें पीलापना आदि गुण हैं, जैसे जीवमें अनंत ज्ञान आदि गुण हैं तथा अग्निमें उष्णता गुण हैं उसी प्रकार जो निरुपाधिभावरूप उपादान है वह शुद्ध उपादान है। 'उपादानकारणकी व्याख्याके समय शुद्ध और अशुद्ध उपादानरूप प्रवचनको सब स्थल पर स्मरण करना—ऐसा भावार्थ है।

यहाँ आचार्यदेवने शुद्ध और अशुद्ध पर्यायको उपादानकारण

कहा है, और सर्वत्र ऐसा ही समझनेकी सूचना दी है।

इस प्रकार शुद्ध उपादान और अशुद्ध उपादानकारणकी व्याख्या समयसार गाथा ८०-८१-८२की टीकामें उन्होंने (श्री जयसेनाचार्यने) की है वहाँसे समझ लेना।



मूलमें भूल

मि. ए. नं. ६.

## 卐 संसारका कारण 卐

मैं परकी क्रियामें जब निमित्त होता हूँ तब परकी क्रिया होती है—ऐसी जिनकी मान्यता है वे मिथ्यादृष्टि हैं। वास्तवमें परकी क्रिया वह स्वयं करता है, 'वह उसका निश्चय है और उसमें दूसरेका निमित्त वह व्यवहार है। निश्चय ज्ञानके बिना व्यवहारका भी सच्चा ज्ञान नहीं होता। मैं परको निमित्त हो सकता हूँ अर्थात् मैं निमित्त होकर दूसरेको समझा सकता हूँ—ऐसी मान्यतामें व्यवहारसे निश्चय आया (अर्थात् आत्माको समझानेके रागके कारण श्रोताको ज्ञान हुआ) अर्थात् पराश्रयबुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव आया। परवस्तुका कार्य स्वयं उससे ही होता है, तुम निमित्त हो—ऐसी अपेक्षा नहीं है—ऐसा निश्चय ज्ञान साथमें रखकर, जिस समय जो निमित्त होता है उसका ज्ञान करता है तो उसमें निश्चयपूर्वक व्यवहार आ जाता है, वहाँ पराश्रयबुद्धि नहीं रहती। "मैं परका कर्ता हूँ" ऐसी बुद्धि अथवा तो "मैं निमित्त बनकर दूसरेको समझा दूँगा ऐसी बुद्धि और 'व्यवहार करते-करते निश्चय प्रगट होता है (राग भावसे वीतरागता प्रगट हो)—ऐसी बुद्धि तीनों एक समान हैं, तीनों अज्ञान हैं।

मैं दूसरेको समझाऊँ ऐसी रागकी वृत्ति उत्पन्न हुई, पर उस रागको व्यवहार कब कहा जायेगा ? अथवा उसे निमित्त कब कहा जायेगा ? सन्मुख-व्यक्तिकी समझनेकी अवस्था वह स्वयं उससे होती है वह उसका निश्चय है; जब वह जीव स्वयं अपनेसे समझा तब उसे वह निश्चय हुआ, और जब जीव ऐसा कहता है कि मुझे अमुक निमित्तसे हुआ है, यह व्यवहार है इस प्रकार निश्चयपूर्वक

व्यवहार है, यह तो जो राग उत्पन्न हुआ वह परमें निमित्त कब कहा जायेगा। उसकी बात चल रही है।

अब, स्वयंको पूर्व जो राग उत्पन्न हुआ वह राग स्वयंमें (अपने शुद्ध परिणमनसे) निश्चयका निमित्त कब कहा जायेगा? अर्थात् रागको व्यवहार कब कहा जायेगा? उसकी बात है, क्या जो राग हुआ वह स्वयं ऐसा जानता है कि मैं परमें निमित्त होता हूँ? अथवा क्या वह राग स्वयं निश्चयको प्राप्त कराता है? रागको तो स्वयं कुछ ज्ञान ही नहीं है, परन्तु उसका निषेध करके—रागका आश्रय छोड़कर, स्वभावके आश्रयसे निश्चय श्रद्धा—ज्ञान प्रगट होता है तब सम्यग्ज्ञान जानता है कि पूर्वमें यह रागका निमित्त था, अथवा इस प्रकारका व्यवहार था, इस प्रकार निश्चयपूर्वक व्यवहार होता है।

जिसप्रकार, रागसे निश्चय (वीतरागता) प्रगट नहीं होता उसी प्रकार स्वयं भी परका निमित्त नहीं हो सकता। जब निश्चय प्रगट होता है, तब रागको व्यवहार कहनेमें आता है और जब निश्चयसे परका कार्य उसके द्वारा ही होता है तब दूसरेको निमित्तपनेका आरोप दिया जाता है। इसमें स्वाश्रय और पराश्रयका गहन सिद्धान्त है। स्वाश्रयदृष्टि वह सिद्धदशाका कारण है और पराश्रयदृष्टि वह निगोदका कारण है। अज्ञानी ऐसा मानता है कि मैं परको निमित्त होऊँ, उसमें उसका पराश्रयभाव है। ज्ञानी ऐसा जानता है कि पर पदार्थोंमें जब उसका स्वयं उपादान कार्य होता है तब आरोपसे मुझे निमित्त कहा जाता है, —इसमें तो स्वाश्रयपनेको मुख्य रखकर स्व—परका ज्ञान किया, वह उपादान सहित निमित्तका ज्ञान यथार्थ है, परन्तु निमित्तके आश्रयसे उपादानका ज्ञान यथार्थ नहीं होता। जब रागका निषेध करके स्वभावके लक्षसे निश्चय प्रगट किया, तब रागको उपचारसे

व्यवहार कहा जाता है अथवा तो स्वभावके आश्रयरूप शुद्ध उपादान प्रगट हुआ तब रागादिको निमित्तरूपसे जाना। लेकिन कोई ऐसा जाने कि मैं यह राग करता हूँ वह (मेरा रागभाव) मुझे वीतरागताका निमित्त होगा—तो वह मिथ्यादृष्टि है, क्योंकि उसके अभिप्रायमें रागका आश्रय है परन्तु स्वभावका आश्रय नहीं। उसी प्रकार कोई ऐसा माने कि मैं जो व्यवहार (शुभभाव) करता हूँ, वह मुझे निश्चय श्रद्धा-ज्ञान प्रकट होनेका (कारण) होगा। तो वह भी व्यवहारके आश्रयमें रुका हुआ मिथ्यादृष्टि है। रागका आश्रय त्यागे उसे व्यवहारका आरोप दिया जाता है। रागादिका लक्ष छोड़कर उपादान प्रगट करे तब उसे निमित्तपनेका आरोप आता है। परन्तु जो राग और निमित्तके आश्रयमें रुका है (मिथ्यादृष्टि) उसे तो उपचार भी नहीं होता।

परका कार्य-जीवन, मरण, सुख, दुःख आदि होने पर अपनेको निमित्तका आरोप आता है। लेकिन मैं परजीवोंको सुख-दुःखमें निमित्त होऊँ-ऐसा जिसका वजन पर उपर जाता है वह जीव मिथ्यादृष्टि है, वह परद्रव्यकी क्रियाका निश्चय भूल जाता है। परमें क्रमबद्ध अवस्था स्वयं होती है, उसे दूसरेकी अपेक्षा नहीं है, वह उसका निश्चय है। और वह निश्चयके ज्ञान सहित पदार्थके निमित्तका ज्ञान करना वह व्यवहार है।

परवस्तु बंधका कारण नहीं है परन्तु जीव स्वयं स्वाश्रय छोड़कर परवस्तुके आश्रयसे एकत्वबुद्धि करता है वही बंधका कारण है। “मैं आत्मा ज्ञायक हूँ” जब ऐसी स्वाश्रयदृष्टि नहीं रहती तब परवस्तुमें एकत्वबुद्धि होती है अर्थात् ‘परका मैं निमित्त हाऊँ’ ऐसा परवस्तुका आश्रय करता है, परके साथ सम्बन्ध करता हूँ। मैं परका निमित्त होनेवाला हूँ अर्थात् कि मैं ज्ञानस्वभाव नहीं हूँ परन्तु पर वही

मैं हूँ—ऐसी अज्ञानीकी दृष्टि है। मैं नहीं हूँ और पर है। ऐसे अभिप्रायसे अपने ज्ञानस्वभावको भूलकर परका आश्रय करता है। अज्ञानीको स्वभावका अस्तित्व जिस प्रकारसे हैं उस प्रकारसे अपने अभिप्रायमें नहीं आया अर्थात् परमें ही अपनेपनेकी मिथ्या मान्यता वह करता है, अर्थात् उसे किसी भी पराश्रयभावसे भिन्नपना नहीं रहा। अतः वह जीव पराश्रयभावसे बंधता ही है।

मैं अपने ज्ञानस्वभावरूप हूँ और परपदार्थोरूप नहीं हूँ, मैं ज्ञानभाव हूँ और मैं परभाव नहीं हूँ—ऐसा जिसके अभिप्रायमें अपना स्वभाव आया है ऐसे ज्ञानीको कही भी पराश्रयबुद्धि नहीं रहती अर्थात् स्वाश्रयभावसे उसकी मुक्ति ही है। स्वाश्रयदृष्टि और पराश्रयदृष्टि पर ही मुक्ति और बंधनका आधार होता है। स्वभावमें पराश्रयरूप होनेकी कोई भी वृत्तियाँ नहीं हैं। अतः जिसे स्वभावदृष्टि प्रगट हो गई है उसे पराश्रय करना नहीं रहा अर्थात् उसे अब संसार नहीं रहा। अज्ञानीको स्वभावदृष्टि नहीं है अर्थात् “परमें मैं ही हूँ, मैं स्वयंमे नहीं हूँ, परन्तु पर वही मैं हूँ” ऐसा भान कर वह स्वका उच्छेद करता है। अपना जो स्वतंत्र अस्तित्व है वह उसे भासित नहीं होता लेकिन परका अस्तित्व ही भासित होता है, अर्थात् परमें ‘मैं यह हूँ’ ऐसी पराश्रयमें एकत्वबुद्धि करता है। अज्ञानीको “मैं नहीं हूँ, यह पर है मैं उसको करता हूँ, उसका निमित्त होता हूँ ऐसी पराश्रयदृष्टि है, लेकिन स्वभावका आश्रय नहि, अतः उसे बंधन ही है—संसार ही है।

ज्ञानीको अपने निरपेक्ष स्वभावकी एकत्वबुद्धि प्रगट हुई है और परमें एकत्वबुद्धिका नाश हो गया है। अतः वह एक स्वाश्रित ज्ञानभावरूप ही रहता है, उसकी दृष्टिमें पराश्रितभावका अभाव है और अज्ञानीकी दृष्टिमें स्वका ही अभाव है, इसलिये उसे किसी भी



प्रकारसे पराश्रयभाव ही है। परका मैं कर्ता नहीं ऐसा मानता है परन्तु मैं परका निमित्त होता हूँ—ऐसा मानकर पराश्रय दृष्टिका त्याग नहीं करता। समस्त वस्तुओंका परिणमन स्वतंत्र है; कोई भी वस्तुका परिणमन तेरे परिणमनकी अपेक्षा नहीं रखता, तथापि 'मेरे परिणाम वस्तुके निमित्तसे होते हैं' ऐसी जो एकत्वबुद्धि है वही अनन्त जन्म-मरणका कारण है, परमें निमित्त होनेकी दृष्टि है वही पराश्रयदृष्टि है।

मिथ्यादृष्टिको परमें एकमेकपनेका अध्यवसाय है कि—'मैं परको सुखी-दुःखी करूँ और पर मुझे सुखी-दुःखी करे इत्यादि' परके साथ संबंधकी अज्ञानीकी यह मान्यता ही संसार है, वही अधर्म है, वही बंधन है, ज्ञानीको स्वाश्रितदृष्टि होनेसे परके साथ संबंधकी मान्यता छूट जाती है, और विकारके साथ (नित्य तादात्म्य) सम्बन्धका अभिप्राय मिट गया है, उसे संसार नहीं, बंधन नहीं है, अधर्म नहीं है। ज्ञानीको जो अल्प रागादि है उसका निषेध वर्तता होनेसे वास्तवमें उसे बंधन नहीं है।

प्रश्न :—मैं परको निमित्त होऊँ ऐसी मान्यतामें क्या दोष है ?

उत्तर :—मैं परको निमित्त होऊँ अर्थात् मेरी अपेक्षासे दूसरेकी अवस्था हो, 'दूसरे द्रव्य स्वतंत्र नहीं है, परन्तु वे परिणमित होनेमें मेरी अपेक्षा रखते हैं ऐसे पराधीन हैं'—जिसकी ऐसी बुद्धि है वह परवस्तुके स्वतंत्र स्वभावको जानता नहीं। स्वतंत्र स्वभावका निषेध किया है और वस्तुके स्वतंत्र स्वभावको जाननेका अपने ज्ञानका स्वभाव है, वह ज्ञानस्वभावको उसने माना नहीं अर्थात् उसने ज्ञानस्वभावरूप अपने अस्तित्वको स्वीकार नहीं किया परन्तु विकार स्वरूप ही आत्माका अस्तित्व माना है अतः अपने आत्माका ही अभाव माना है। यही सबसे बड़ा अधर्म है और यही संसार है।

आत्माका स्वभाव सबको जाननेका है, लेकिन किसीका निमित्त होना आत्माका त्रिकाल स्वभाव नहीं, निमित्त-नैमित्तिकभाव वर्तमान एक समय मात्रका है। जो उसको अपना स्वरूप (स्वभाव) मानते हैं वे पर्यायमूढ मिथ्यादृष्टि हैं। सबको जाननेवाला अखंड ज्ञानस्वभावी मैं हूँ-ऐसा न मानकर, एक भी स्थान पर मेरे निमित्तकी अपेक्षा है ऐसा जिसने माना है उसने तीनोंकालके समस्त पदार्थोंकी स्वतंत्रताको नहीं माना है, और सबको जाननेवाले अपने ज्ञानस्वभावका भी विच्छेद किया है, उसे सर्वज्ञ भगवानकी श्रद्धा नहीं है, सर्वज्ञ भगवानने जो कहा उसकी भी श्रद्धा नहीं है “पर वस्तुयें पराधीन हैं, परवस्तुको मेरी अपेक्षा है”—ऐसा अज्ञानी भले ही मान ले, लेकिन इससे कोई परवस्तु पराधीन नहीं हो जाती, केवल अज्ञानीका ऐसे विपरीत अभिप्रायसे अनन्त संसारभाव वृद्धिगत होता है।

‘परवस्तुके नाममें मैं निमित्त होता हूँ अर्थात् परवस्तुओंको मेरी आवश्यकता है, मेरे दयाके शुभपरिणाम हो तो पर जीव बच जायेगा, मेरे हिंसक अशुभ परिणामसे पर जीव मर जायेगा। मेरे शुभ परिणाम हों तो सत्य भाषा निकलती हैं ऐसी मान्यता ही अज्ञान है। अज्ञानवश ही उसे परका कर्तापना और परके साथ सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है, वास्तवमें ऐसा नहीं है। आचार्यदेव समयसारके ३१वें श्लोकमें कहते हैं कि-इस अज्ञानको प्राप्त होकर जो जीव परसे मरण, जीवन, सुख, दुःख देखता है, अर्थात् मानता है वह अहंकार-रससे कर्म करनेका इच्छुक है और मिथ्यादृष्टि है; वह अपने आत्माका ही घात करता है। विपरीत मान्यताके कारण जैसा वस्तुका स्वरूप है वह उसे दृष्टिगत नहीं होता, अपितु विपरीत ही दिखता है। एक दूसरेका कोई

कुछ भी करे ऐसा वस्तुस्वभाव ही नहीं है, लेकिन अज्ञानवश अज्ञानीको ऐसा प्रतिभास होता है। मेरे कारण परका कुछ होता है। और परके कारण मुझमें कुछ होता है—ऐसा अज्ञानीको दृष्टिगत होता है। इस जगतमें जो कुछ बंधन और दुःख है वह अज्ञानसे ही है। ज्ञानीको बंधन तथा दुःख नहीं है।

जिन्हें परसे पृथक् अपने ज्ञानस्वभावकी खबर नहीं है, वे जीव जिस-जिस पदार्थको देखता है वह सर्व पदार्थोंको अपनी मान्यतासे देखता है। एकपनेके अध्यवसाय वश देखता होनेसे उसे सब विपरीत ही दिखाई देता है। जिस वस्तुको देखता है उस वस्तुरूप ही स्वयं को मान लेता है परन्तु वस्तु ऐसी नहीं है। मात्र अज्ञानसे ऐसा भासित होता है। यदि अज्ञानका त्यागकर ज्ञानभावसे देखे तो स्वतंत्रता भासित होगी। अज्ञानवश उसे स्वतंत्रता भासित नहीं होती। यह लकड़ी ऊँची हुई, वहाँ 'इस हाथमें लकड़ीको ऊँचा किया ऐसा अज्ञानवश भासित होता है। दो द्रव्योंकी एकरूपता माननेसे ऐसा प्रतिभासित होता है। ज्ञानियोंको सम्यग्ज्ञानसे ऐसा भासित होता है कि लकड़ी अपने पर्यायके (परिणमन) स्वभावसे ऊँची हुई है, हाथके कारण नहीं। उसी प्रकार मेरेमें हिंसा या दयाके भावके कारण जीव मर गया या जीवित रहा आदि अनेक प्रकारकी जितनी मान्यताएँ हैं वे सब अज्ञानके कारण ही हैं। समस्त जीव स्वयं अपनी उस उस समयकी स्वतंत्र अवस्थासे ही सुखी या दुःखी होते हैं। इसके अतिरिक्त दूसरे समस्त पदार्थोंकी जो जो अवस्था होती है वे सब परद्रव्यके भाव हैं, अपने भाव नहीं हैं। स्वयं द्वारा, परद्रव्यके भावोंको करना संभवित नहीं है। अज्ञानीका अध्यवसाय "परमें कुछ करूँ" ऐसा अभिप्राय है वह मिथ्या है, और वही बंधनका कारण है—जैसे आकाशको फूल नहीं होते अतः "मैं आकाशके फूल चुनता

हूँ' ऐसा अभिप्राय मिथ्या है—विपरीत है; परवस्तुमें परवस्तुका सहयोग ही नहीं है, परवस्तुके भाव अपनेमें असत् है अतः 'मैं परवस्तुमें कुछ करूँ' ऐसा जो अज्ञानीका अध्यवसाय है वह अवश्यरूपसे मिथ्या है, विपरीत है, झूठा है, निरर्थक है। जीवकी गलत मान्यतासे उस मान्यताके अनुसार परमें कुछ नहीं होता अतः वह विपरीत मान्यता परमें निरर्थक है और वह विपरीत मान्यता अपनेमें अनर्थरूप है, अपने आत्माको अनन्त संसारमें परिभ्रमण करनेके लिये वह समर्थ है परन्तु परमें बिलकुल निरर्थक है।

प्रश्न :—निश्चयसे तो परका कुछ भी नहीं किया जा सकता यह बात यथार्थ है, परन्तु व्यवहारसे तो परका कर सकते हैं ?

उत्तर :—निश्चय अपनेमें और व्यवहार परमें—ऐसा निश्चय व्यवहारका स्वरूप नहीं है। किसी भी प्रकारसे परद्रव्यके साथ एकतारूप अभिप्राय छोड़ना नहीं है अतः अज्ञानी जीव ऐसा मानता है कि व्यवहारसे तो परका कार्य किया जा सकता है। ज्ञानी कहते हैं कि भाई, व्यवहारसे भी तुम परका कुछ नहीं कर सकते हो (क्योंकि यह व्यवहार तो कथन मात्र है) व्यवहार किसे कहते हैं उसका ज्ञान ही तुम नहीं है। जबतक परसे साथ संबंधका अभिप्राय विद्यमान है वहाँ तक व्यवहारका ज्ञान ही नहीं होता। पर पदार्थका कार्य स्वयं उसके द्वारा हुआ वह पदार्थका निश्चय है और उसी समय निमित्तरूप दूसरे (अनुकूल) पदार्थोंकी उपस्थितिको उसका निमित्त कहना वह व्यवहार है। अर्थात् प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र है, निरपेक्ष है, वह निश्चय है और एक पदार्थके परिणाममें दूसरे पदार्थको निमित्त कहना वह व्यवहार है। परन्तु एक पदार्थमें दूसरे पदार्थने कुछ किया ऐसा मानना वह व्यवहार नहीं है, वह तो अज्ञान (व्यवहाराभास) है।

प्रश्न :—व्यवहारसे परका कर नहीं सकता, परन्तु मैंने परका किया ऐसा व्यवहारसे बोल तो सकते हैं ?

उत्तर :—बोलनेकी क्रिया तो जड़की है, भाषा जड़ है। जिनकी दृष्टि वाणी उपर है वाणीका कर्ता मैं हूँ ऐसा अभिप्राय है वे अज्ञानी हैं। जब वाणी निकलती है तब अंतरका अभिप्राय सत्य है या गलत उस पर ही धर्म-अधर्मका निर्णय होता है। यदि सत्य निर्णय है तो धर्म है, और गलत (झूठ) अभिप्राय है तो अधर्म है। अंतरके अभिप्रायका अवलोकन करता नहि और “मैं ऐसा बोल सकता हूँ, वैसा बोल सकता हूँ वह भाषामें संतुष्ट हो जाता है वह बहिर्दृष्टि है।

एक समयका पराश्रयभाव वह संसार है, त्रिकाली आत्मस्वभावमें वह नहीं। स्वभाव अपने स्वयंके आश्रय स्थिर होता है, विकारका आश्रय-विकारको स्वभाव माननेरूप अभिप्राय भी ज्ञानी आत्मा नहीं करता तो परवस्तुका आश्रय तो उसे कहाँसे होगा ? मुझे परवस्तुका आश्रय नहिं और परवस्तुको मेरा आश्रय नहि है—ऐसी दृष्टिमें संसार नहीं होता। पराश्रयके (परके साथ एकत्व) विना विकार कदापि नहीं होता, जहाँ पराश्रयका अभिप्राय टला और स्वाश्रय किया वहाँ किसके आश्रयसे विकार होगा ? अर्थात् ज्ञानीको स्वाश्रय दृष्टिमें ही मुक्ति है, और ‘मैंने परका किया’ व्यवहारसे मैं परका करूँ” ऐसे अज्ञानीके अभिप्रायमें परमें एकत्वबुद्धिरूप मिथ्यात्व भाव विद्यमान है। मैं परको निमित्त होऊँ अर्थात् क्या ? इसका अर्थ यह हुआ कि मेरा लक्ष स्वाश्रयमें न स्थिर होकर परमें कहीं लक्ष जाता है, मेरा राग परमें उन्मुख होता है, और मैं परका निमित्त होऊँ, तब वह परकी अवस्था आयी-अज्ञानीकी बुद्धिमें रागके

साथ और परके साथ एकत्व विद्यमान है। उसे वहाँसे पृथक् करनेका अभिप्राय नहीं है। मैं तो ज्ञानरूप हूँ, ज्ञानका कार्य मात्र जाननेका है, परन्तु राग करके परमें निमित्त होनेका कार्य ज्ञानका नहीं। ज्ञानस्वभाव परसे निरपेक्ष है—जो ऐसे अपने स्वभावको नहीं जानता और परके साथ एकत्व स्थिर करता है वह जीव ज्ञान परिणामको पहिचानता नहीं और देव-गुरु-शास्त्रके कथनका मुख्य प्रयोजन है उसे भी समझता नहीं। मात्र निरपेक्ष ज्ञानस्वभाव बतलानेका ही ज्ञानीयोंका प्रयोजन है। ज्ञानस्वभावको समझे बिना अहिंसा-हिंसा आदिके कोई शुभ या अशुभ परिणाम करता है वह सब उसे अपने लिये अनर्थका कारण होते हैं। परमें तो उससे किंचित् मात्र भी कार्य नहीं होता। हिंसा या अहिंसाके जो शुभ-अशुभ परिणाम हैं वे वास्तवमें संसारका मूल कारण नहीं हैं परन्तु उन परिणामोंमें एकत्वबुद्धि ही संसारका मूल कारण है। शुभ परिणाममें एकत्वबुद्धिके बिना उससे धर्मकी मान्यता ही नहीं होती। और मैं परको जीवित-मरण कर सकता हूँ ऐसा परमें एकत्वबुद्धिके बिना माने नहीं। मैं परको सुखी-दुःखी कर दूँ—ऐसे अभिप्राय मात्रसे पर जीव तो कहीं सुखी नहीं हो जाता लेकिन उपरोक्त मान्यतासे स्वयं दुःखी होता है, परका अच्छा करनेकी मान्यता (अभिलाषा) इच्छा जिसे अपना ही अनर्थ होता है, परका कुछ नहीं होता। परका अच्छा-बुरा तो उसके (स्वयंके) परिणमनके आधीन है।

जिसका विषय न हो वह (मान्यताका राग) व्यर्थ है। अर्थात् जीव जिस प्रकार मानता हो उसरूप वस्तुस्वरूप न हो तो उसकी मान्यता व्यर्थ है, मिथ्या है। अज्ञानीको ऐसी मान्यता है कि मैं पर जीवका कुछ कर दूँ। फिर भी वह परजीवका कुछ नहीं कर सकता। अर्थात् उसकी मान्यता व्यर्थ होनेके कारण मिथ्या है, वही

बंधनका कारण है। अन्य वस्तुका परिणमन क्या तेरी अपेक्षा रखता है ? वह स्वयं अपने द्रव्यत्वकी अपेक्षासे परिणमित होता है। द्रव्य स्वयं अपने स्वतंत्रपने परिणमित होनेपर भी तुम ऐसा मानते हो कि उसके परिणमनमें तुम्हारी अपेक्षा है—यह मान्यता ही तुझे दुःखका कारण है। परमें एकत्वबुद्धि ही संसार है। तेरे अभिप्रायके अनुसार वस्तुमें होता ही नहीं। परके करनेका अभिप्राय और परिणाम व्यर्थ होते हैं—निरर्थक है—झूठे हैं और वही उसे बंधका कारण है।

आत्मा और अन्य वस्तुयें भिन्न हैं। आत्मा अपने स्वभावका आश्रय छोड़कर जो विपरीत मान्यता करता है, उसमें परका आश्रय है, अर्थात् परमें एकत्व बुद्धिसे मिथ्यात्व हुआ है। परन्तु उसकी मिथ्या मान्यताका कोई विषय नहीं है। अर्थात् मिथ्या मान्यताके अनुसार वस्तुका स्वरूप नहीं है। संसारमें परवस्तुएँ हैं, परन्तु अज्ञानीके अभिप्राय अनुसार उनका स्वरूप नहीं है। वस्तुस्वरूप परकी अपेक्षा नहीं रखता। ऐसे निरपेक्ष वस्तुस्वरूपको समझकर पराश्रयका त्याग कर स्वाश्रयमें स्थिर होना वही मुक्तिका उपाय है।

प्रश्न :—‘मैं परको सुखी कर सकता हूँ’ ऐसी हमारी मान्यता भले ही गलत हो परंतु परको सुखी करनेके हमारे भाव तो अच्छे हैं न ?

उत्तर :—तुम्हारा स्वभाव तो वस्तुका स्वरूप जैसा है वैसा जाननेका है, उसके बदले मैं जाननेवाला नहीं परन्तु परका करनेवाला हूँ ऐसे अभिप्रायसे तुम अपने आत्माका हनन कर देते हो। ‘मैं परको सुखी करूँ’ ऐसा तेरा भाव आत्माको अनन्त दुःखका कारण है, तो उस भावको अच्छा कौन माने ? प्रथम तुम वस्तुस्वरूप समझकर अपना अभिप्राय सच्चा तो करो ! फिर सच्चा अभिप्राय होनेके बाद

शुभ या अशुभ भाव आयेंगे उनका कर्तापना तुम्हें रहेगा नहि और तुम्हारी उसमें एकत्वबुद्धि नहीं होगी। अतः सबसे प्रथम सभी परका आश्रय छोड़कर सबसे निरपेक्ष अपने स्वभावको समझो !

अन्य जीव स्वयं समझनेवाला है और उसमें मैं निमित्त बननेवाला हूँ, अतः उसे निमित्त होने हेतु मुझे यह शुभराग होता है—ऐसा जिसका अभिप्राय है वह मिथ्यादृष्टि है, उसे अभी पराश्रितदृष्टि है; क्या पर जीवके निमित्त होने हेतु तुमने राग किया है ? क्या अन्य जीव समझनेके लिये तेरे शुभरागकी अपेक्षा रखता है ? तुम जो राग हुआ है वह परके निमित्त होनेका कारण नहीं है, लेकिन तुम्हारे दोषसे ही उत्पन्न हुआ है। इन दोनोंमें बड़ा अंतर है। रागके समय जिसकी स्वाश्रयदृष्टि है वह जीव अपनी पर्यायकी योग्यताको देखता है, और जिसकी पराश्रितदृष्टि है वह जीव परकी योग्यता देखता है तथा परके कारण अपनेको राग हुआ ऐसा मानता है। परवस्तु मात्र ज्ञानका ही निमित्त है उसके बदले अज्ञानी उसके कारण राग हुआ ऐसा मानता है। अपना राग परको निमित्त होनेके लिये नहीं होता, उसी प्रकार परवस्तुको उस रागकी भी अपेक्षा नहीं है। 'परवस्तुमें सुख-दुःख होना ही है और मैं उसमें निमित्त होनेवाला हूँ अतः मुझे राग-द्वेष होते हैं—यह मान्यता झूठी है। राग द्वारा परका निमित्त होनेकी जिसकी दृष्टि है, उसे रागमें और परमें एकत्वबुद्धि ही है, वह सदैव पर लक्षसे राग करता रहेगा और परका निमित्त होगा। परके साथ संबंध चालु रखना है, लेकिन परका सम्बन्ध तोड़कर आत्माके स्वभावका आश्रय नहि करना है। परके सम्बन्धकी दृष्टि ही बंधनकी जड़ (मूल) है, और वही संसारका कारण है, यही मिथ्यात्व है और परकी अपेक्षा रहित निजस्वभावका आश्रय वह मुक्तिका कारण है।





